ISSN NUMBER : 2455-9717
RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 3, अंक : 9
अप्रैल-जून 2018
मूल्य पचास रुपये

आइए, इस दुनिया को बेटियों के रहने लायक बनाएँ ताकि सुदूर अंचल के किसी किसान की यह बेटी और सारी बेटियाँ यूँ ही मुस्कुराती रहें.....। -टीम शिवना-विभोम

तुमने उसे मार दिया, अच्छा किया !
पिछली से पिछली...
उससे भी पिछली वाली की तरह
इसे भी मार दिया, अच्छा किया;
एहसान किया आधी आबादी पर;
वरना तो... आ जाया करती सपनों में
करमजली...
पूछा करती जाने कैसे-कैसे सवाल;
सुनाती बार-बार,
हैवानियत की हर हद का पार होना;
क्यों नहीं मर गई थी वो मरजानी..
पैदा होते ही...
कम से कम
वजह तो कम दर्द वाली होती,
कोख़ में मुक्के मारने की.....
सदियों से जना है तुम्हारी पुश्तों को....
उसका ये सिला?
ऐ ख़ुदा ! बाँझ कर दे
दुनिया की आख़िरी लड़की तक को
जाओ रे..... तुम्हारा बीज नाश हो....
-पारुल सिंह

शिवना प्रकाशन : जनवरी 2018 सेट में शामिल पुस्तकें

विमर्श - नक़्क़ाशीदार केबिनेट
संपादक : पंकज सुबीर

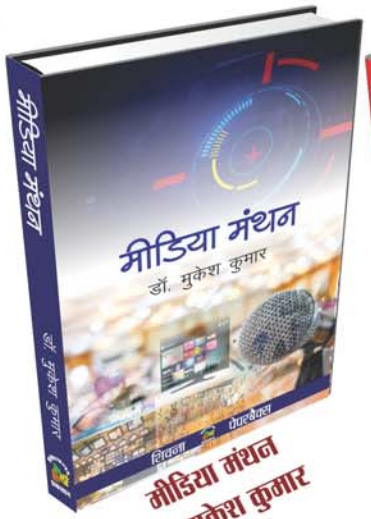

मीडिया मंथन
डॉ. मुकेश कुमार

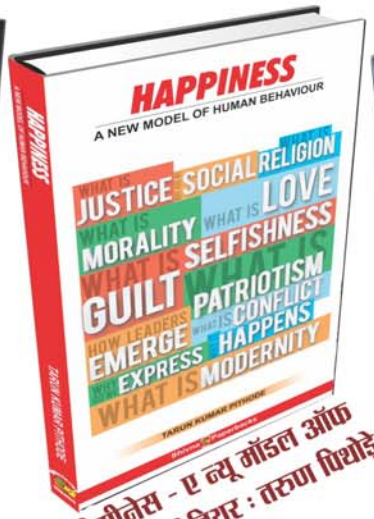

हैपीनेस - ए न्यू मॉडल ऑफ
ह्यूमन बिहेवियर : तरुण पिथोड़े

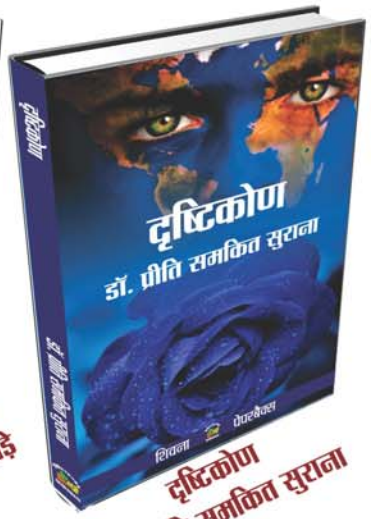

दृष्टिकोण
डॉ. प्रीति समकित सुराना

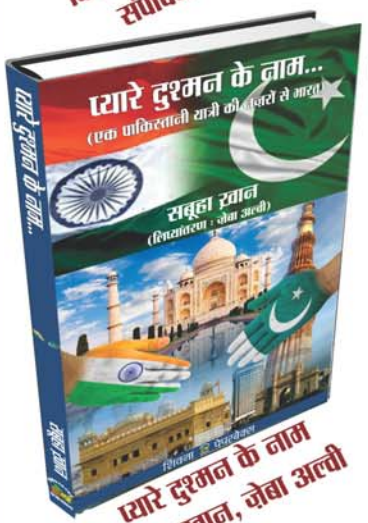

प्यारे दुश्मन के नाम
सबूहा ख़ान, ज़ेबा अली

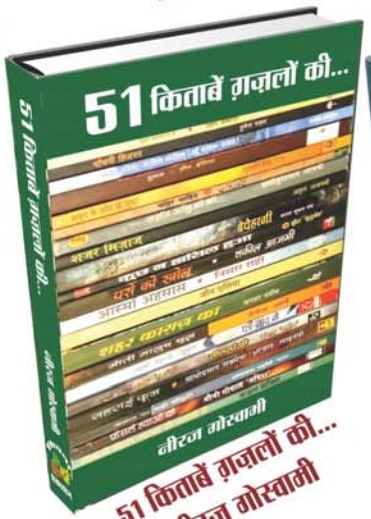

51 किताबें ग़ज़लों की...
नीरज गोस्वामी

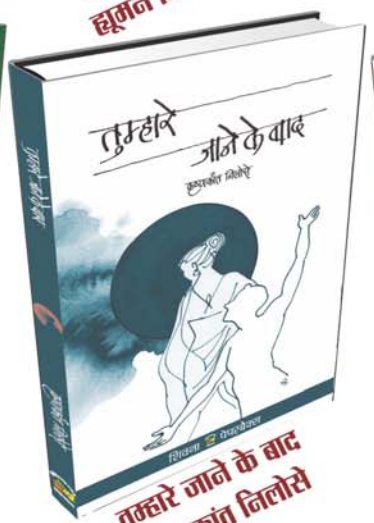

तुम्हारे जाने के बाद
कृष्णकांत निलोसे

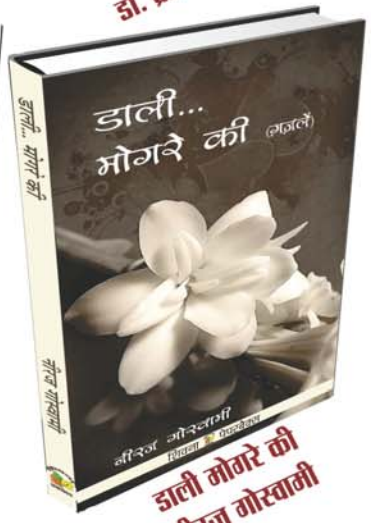

डाली मोगरे की
नीरज गोस्वामी

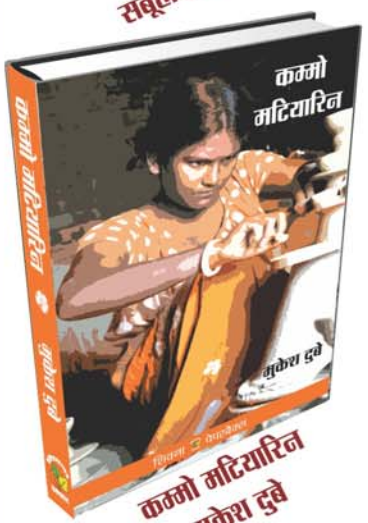

कम्मो मटियारिन
मुकेश दुबे

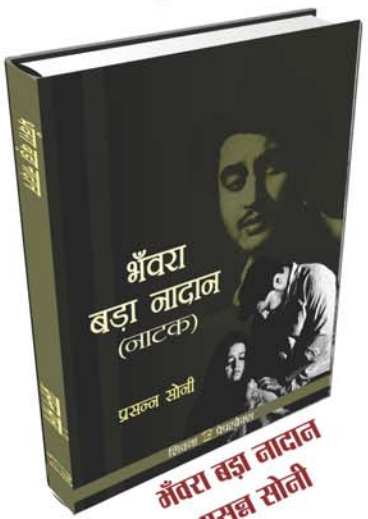

भँवरा बड़ा नादान
प्रसन्न सोनी

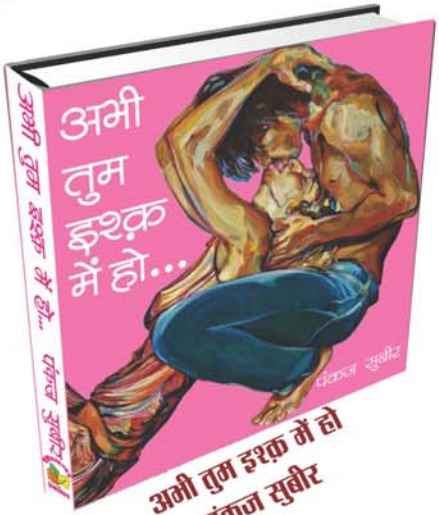

अभी तुम इश्क़ में हो
पंकज सुबीर

शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट
कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन
की पुस्तकें सभी प्रमुख
ऑनलाइन शॉपिंग
स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart.com http://www.flipkart.com
paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना साहित्यिकी

वर्ष : 3, अंक : 9

त्रैमासिक : अप्रैल-जून 2018

RNI NUMBER :- MPHIN/2016/67929

ISSN : 2455-9717

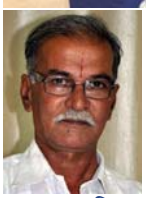

आवरण चित्र

राजेन्द्र शर्मा

आवरण कविता

पारुल सिंह

संरक्षक एवं सलाहकार संपादक

सुधा ओम ढींगरा

●

प्रबंध संपादक

नीरज गोस्वामी

●

संपादक

पंकज सुबीर

●

कार्यकारी संपादक

शहरयार

●

सह संपादक

पारुल सिंह

●

छायाकार

राजेन्द्र शर्मा

●

डिज़ायनिंग

सनी गोस्वामी

●

संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय

पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6

सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट

बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001

दूरभाष : 07562405545, 07562695918

मोबाइल : 09806162184 (शहरयार)

ईमेल : shivnasahityiki@gmail.com

ऑनलाइन 'शिवना प्रकाशन'

http://shivnaprakashan.blogspot.in

फेसबुक पर 'शिवना प्रकाशन'

https://facebook.com/shivna prakashan

●

एक प्रति : 50 रुपये,

(विदेशों हेतु ५ डॉलर $5)

सदस्यता शुल्क

200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष)

1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)

बैंक खाते का विवरण :

Name: Shivna Sahityiki

Bank Name: Bank Of Baroda

Branch: Sehore (M.P.)

Account Number: 30010200000313

IFSC Code: BARB0SEHORE

कुछ यूँ...

आवरण कविता

पारुल सिंह

संपादकीय / शहरयार / 4

व्यंग्य चित्र / काजल कुमार / 5

स्मरण

सुशील सिद्धार्थ /अशोक मिश्र / 6

जो पिछले दिनों पढ़ा...

हरी मुस्कुराहटों वाला कोलाज, गूदड़ बस्ती

अभी तुम इश्क़ में और हसीनाबाद

सुधा ओम ढींगरा / 9

विमर्श

फ़ेक एनकाउंटर /

प्रेम जनमेजय, अपूर्व जोशी / 12

पेपर से पर्दे तक... /

कृष्णकांत पण्ड्या / 14

फिल्म समीक्षा के बहाने

निमकी मुखिया / वीरेन्द्र जैन / 19

पुस्तक-आलोचना

हंसा आएगी ज़रूर / डॉ. सीमा शर्मा / 21

पुस्तक चर्चा

चम्बल में सत्संग / अशोक अंजुम / 20

तेरी हँसी -कृष्ण विवर सी / पूनम सिन्हा ''श्रेयसी'' / 24

हैप्पीनेस ए न्यू मॉडल ऑफ ह्यूमन बिहेवियर / तरुण कुमार पिथोड़े / 27

टुकड़ा टुकड़ा इन्द्रधनुष / आशा शर्मा / 29

निब के चीरे से / ओम नागर / 32

पुरवाई/ कृष्णा अग्निहोत्री / 34

तुम्हारे जाने के बाद / कृष्णकांत निलोसे / 37

समीक्षा

चित्रा देसाई / ज़िंदगी का क्या किया / धीरेन्द्र अस्थाना / 23

जवाहर चौधरी / स्वप्नदर्शी / अश्विनी कुमार दुबे / 25

सुषमा मुनीन्द्र / तपते जेठ में गुलमोहर जैसा / सपना सिंह / 26

घनश्याम मैथिल 'अमृत' / ढाक के तीन पात / मलय जैन / 28

राजेश्वरी / अच्छा, तो फिर ठीक है/ कामेश्वर / 30

रेणु / मन कितना वीतरागी / पंकज त्रिवेदी / 33

डॉ. नितिन सेठी / 51 किताबें ग़ज़लों की / नीरज गोस्वामी / 35

पारुल सिंह / बात फूलों की / सर्वजीत सर्व / 36

गोविन्दप्रसाद बहुगुणा / हाईवे E 47 / अर्चना पैन्यूली / 38

यात्रा संस्मरण

पधारो म्हारे देस ...../ राजश्री मिश्रा / 39

रपट

भारत भवन/ प्रवीण पाण्डेय/ 45

नाटक / प्रज्ञा / 47

संपादन, प्रकाशन एवं संचालन पूर्णत: अवैतनिक, अव्यवसायिक। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री लेखकों के निजी विचार हैं। संपादक तथा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचारों का पूर्ण उत्तरदायित्व लेखक पर होगा। पत्रिका जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्टूबर माह में प्रकाशित होगी। समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र सीहोर (मध्यप्रदेश) रहेगा।

संपादकीय

रचना लेखक की नहीं पाठक की होती है

शहरयार

shaharyarcj@gmail.com
+91-9806162184

हिन्दी का लेखक इन दिनों बहुत असहिष्णु होता जा रहा है। यह जो असहिष्णुता है यह अपनी रचनाओं को लेकर पैदा हो रही है। बात को शुरू करने से पहले एक क़िस्सा जो बाबा नागार्जुन को लेकर कहीं पढ़ा / सुना था। क़िस्सा यूँ है कि बाबा की कोई नई पुस्तक उनके किसी घनघोर प्रशंसक / पाठक को पसंद नहीं आई। संयोग से बाबा उसी के शहर में कोई कार्यक्रम करने आए। वह प्रशंसक कार्यक्रम में पहुँचा और कार्यक्रम समाप्त होने की प्रतीक्षा करता रहा। जैसे ही कार्यक्रम समाप्त हुआ वो बाबा के सामने पहुँच गया, ग़ुस्से से भरा। किताब उसके हाथ में थी, तमक कर बोला – 'ये क्या लिखा है आपने? मेरे पन्द्रह रुपये इसे ख़रीदने पर बेकार हुए, इसे रखिये और मेरे पन्द्रह रुपये लौटाइये।' बाबा अपनी वही प्रसिद्ध बच्चों वाली हँसी हँसते हुए अपने प्रशंसक का ग़ुस्सा कम करने में लग गए। बाबा नागार्जुन को सार्वजनिक रूप से ऐसी बात कह देना और उसके बाद बाबा का बुरा नहीं मानना, उल्टा पाठक का ग़ुस्सा कम करने की कोशिश करना, आज की तारीख़ में कोई इस घटना पर विश्वास नहीं करेगा। लेकिन बाबा को पता था कि रचना को लिख देने के बाद वह रचना पाठक की हो जाती है, उस पर लेखक का अधिकार नहीं होता। वह पाठक जिसने आपकी कई-कई रचनाओं की दिल खोल कर प्रशंसा की है, वह आपकी कमज़ोर रचना पर कठोर टिप्पणी करने का पूरा अधिकार रखता है। क्या ऐसा कुछ आज हो सकता है ? बिल्कुल नहीं। क्योंकि अब लेखक अपनी रत्ती भर भी आलोचना सुनने को कतई तैयार नहीं है। अच्छी रचना पर मिलने वाली दिल खोल प्रशंसा पर तो वह अपना हक़ समझता है लेकिन ख़राब रचना पर होने वाली ज़रा-सी भी आलोचना उसे किसी षड्यंत्र का हिस्सा लगती है। पाठक की ज़रा भी विपरीत टिप्पणी किसी रचना पर आई, कि वह टिप्पणी को भी और पाठक को भी, दोनों को अदालत में खींच ले जाता है। सोशल मीडिया की अदालत में। सोशल मीडिया की अदालत, मतलब फेसबुक का आपका अपना वह पेज जहाँ सारे आपके मित्र ही आपकी पोस्ट पर टिप्पणी करने आएँगे। और बहुत ज़ाहिर-सी बात है कि वे मित्र वहाँ आकर आपका ही समर्थन करेंगे। अमीर क़ज़लबाश का एक शेर है–

उसी का शहर वही मुद्दई वही मुंसिफ़
हमें यक़ीं था हमारा क़ुसूर निकलेगा

लेखक अपनी फेसबुक पर अपनी एक तल्ख़ टिप्पणी के साथ पाठक की बुद्धि, उसकी समझ पर प्रश्नचिह्न लगाते हुए पोस्ट लगा देता है और उसके बाद उसके मित्रगण भी तुरंत उसकी हाँ में हाँ मिलाते हुए शुरू हो जाते हैं। लेकिन इन सबमें नुकसान किसका होता है ? निश्चित रूप से लेखक का ही। पाठक का तो कोई नुकसान नहीं होता, वह तो किसी ओर को पढ़ने लगेगा। वह विकल्पहीन नहीं है, उसके पास बहुत सारे विकल्प हैं। अभी तक वह आपके व्यक्तित्व को जाने बिना आपकी रचनाओं के कारण आपको पढ़ता रहा लेकिन वह अब आपको जान गया है, इसलिए वह अब आपकी अच्छी रचना में भी आपके व्यक्तित्व को तलाश करेगा। बाबा नागार्जुन वाली घटना में जो पाठक था, उसने निश्चित रूप से बाद में भी बाबा को पढ़ा होगा, और बाबा भी अगली रचना लिखते समय उस हठी पाठक को याद करके सचेत हुए होंगे। मतलब यह कि दोनों ही तरफ़ से लाभ बाबा को ही प्राप्त हुआ। पाठक किसी भी लेखक के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होता है, बिना पाठक के किसी भी लेखक का कोई अस्तित्त्व नहीं होता है। कला की कोई भी विधा अपने गुणग्राहक के बिना कोई अस्तित्त्व नहीं रखती है। श्रोता, दर्शक, पाठक ये वे गुणग्राहक हैं, जिन्हें कलाकारों को सबसे ज़्यादा सहेज कर रखना चाहिए। यही तो वे हैं जिनसे आपके संसार को पूर्णता मिलती है। वरना तो एक पुरानी कहावत है ही कि 'जंगल में मोर नाचा किसने देखा ?' आप अपना मोर जंगल में नचाते रहिए किसे फ़र्क़ पड़ने वाला है?

यह भी एक बहुत मानी हुई बात है कि कोई भी कलाकार हमेशा अपना सर्वश्रेष्ठ नहीं दे सकता, यह बात लेखक पर भी लागू होती है। लेखक भी हमेशा अपना सर्वश्रेष्ठ ही देगा यह ज़रूरी नहीं है। कई बार एक प्रकार की शिथिलता लेखन में आ जाती है, जिसका प्रभाव रचना पर भी दिखाई देता है। इस शिथिलता को सबसे पहले पाठक ही पकड़ता है, उसके अलावा कोई नहीं पकड़ सकता। या अगर कोई समीक्षक, आलोचक पकड़ भी लेगा तो लेखक के साथ अपने संबंधों के चलते वह इस ओर इशारा नहीं करेगा। पाठक का किसी से कोई संबंध नहीं होता, उसका संबंध बस रचना से होता है, तो वह न केवल इशारा करता है बल्कि पूरी तल्ख़ी के साथ इशारा करता है। जब भी आपका कोई पाठक ऐसा इशारा करता है तो समझिए कि यह आत्मावलोकन का समय है, पाठक को घसीट कर फेसबुक की अदालत में ले जाने का नहीं है। क्योंकि वह जो पाठक है वह आपकी रचनाओं का प्रशंसक है, आपका नहीं है। उसका और आपका जो रिश्ता है वह आपकी रचनाओं के माध्यम से ही हुआ है। पाठक काँच का बर्तन है उसे बहुत सँभाल कर रखिए, बहुत हल्का भी अगर झटका लगेगा तो यह टूट जाएगा.....।

आपका ही

शहरयार

व्यंग्य-चित्र

काजल कुमार

kajalkumar@comic.com

स्मरण

बहुत याद आएँगे जीनियस सुशील सिद्धार्थ

अशोक मिश्र (संपादक : बहुवचन)

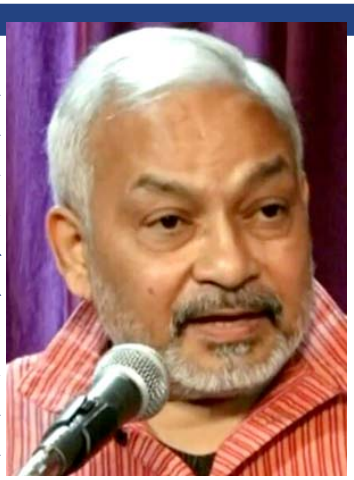

(व्यंग्यकार, संपादक, कवि, शायर, समीक्षक, आलोचक श्री सुशील सिद्धार्थ जी शिवना साहित्यिकी के साथ प्रारंभ से ही जुड़े थे। शिवना साहित्यिकी में प्रकाशित होने वाला उनका व्यंग्य स्तंभ –'होता है शबो-रोज़ तमाशा मेरे आगे', बहुत पढ़ा और सराहा जाता रहा। उनका असामयिक निधन 'शिवना-विभोम परिवार' के लिए एक अपूरणीय क्षति है। शिवना प्रकाशन के सारे आयोजनों में उनकी उपस्थिति हमेशा हुआ करती थी। वरिष्ठ कथाकार श्री अशोक मिश्र का अपने मित्र श्री सुशील सिद्धार्थ पर लिखा यह आलेख युवा कहानीकार श्री प्रभात रंजन के चर्चित ब्लॉग 'जानकी पुल' से साभार प्रकाशित किया जा रहा है।)

सुशील सिद्धार्थ के अचानक निधन की पहली ख़बर मुझे कहानीकार मनोज कुमार पांडे से शनिवार 17 मार्च को सुबह साढ़े दस बजे मिली उस समय बैंक से कुछ काम निपटाकर कैंपस स्थित घर की ओर लौट रहा था। अपने प्रिय मित्र के निधन की ख़बर से एकाएक बहुत पीड़ा का अनुभव हुआ। सुशील की यह कोई उम्र नहीं थी जाने की लेकिन ज़िंदगी में जब वह प्रतिष्ठा की ओर अग्रसर थे ऐसे में मृत्यु का दबे पाँव आना विधि की बिडंबना ही है। सुशील सिद्धार्थ आजीवन साहित्य, पत्रकारिता के गलियारे में ही घूमते-फिरते लिख-पढ़कर जीविकोपार्जन करते रहे थे। वे एक बेहद मेधावी व्यंग्यकार, आलोचक और संपादक थे। लेखन के शुरूआती काल में वे अवधी भाषा में कविताएँ लिखते थे और 'बिरवा' नाम की पत्रिका निकालते थे। उन्होंने कुछेक कहानियाँ भी लिखीं और उनका एक उपन्यास जो कि लिखा जा रहा था शायद पूरा नहीं हो सका। यह उनकी नियति थी या कि भाग्य कि उनके जैसे अव्वल दर्जे के जीनियस व्यक्ति को हिंदी की दुनिया में गोरख पांडेय, शैलेश मटियानी या फिर मुद्राराक्षस की भाँति जीवन गुज़ारना पड़ा ।

यहाँ प्रश्न है कि आख़िर सुशील कौन थे और जीवन में क्या बनना चाहते थे और इस समाज, व्यवस्था ने उनको क्या बनाया। ज़ाहिर है कि ताउम्र फ्रीलांसर बनकर जीने और एक से दूसरी फिर तीसरी जगह भटकने को मजबूर कर दिया था। उनका पूरा नाम सुशील अग्निहोत्री था जिसे जातिसूचक संबोधन हटाकर वे सुशील सिद्धार्थ के नाम से ही लेखन करते मशहूर हुए। सुशील ने लखनऊ विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की थी लेकिन विश्वविद्यालय में उनकी नियुक्ति क्यों नहीं हुई यह बहुत बड़ा यक्षप्रश्न है। यह अकादमिक भ्रष्टाचार या लेन-देन का मामला था उस पर सुशील ने कभी चर्चा नहीं की। यहीं से उनकी ज़िंदगी की गाड़ी पटरी से उतर गयी जिसके बाद उनका भटकाव ताउम्र चलता ही रहा। यह कोई उनके जाने की उम्र नहीं थी। वे साहित्य के मोर्चे पर बड़ी मज़बूती के साथ डटे थे। उनका जन्म 2 जुलाई 1958 को उत्तर प्रदेश के सीतापुर जिले के एक गाँव भीराँ में एक हिंदी अध्यापक के परिवार में हुआ था। साहित्य की यात्रा का आरम्भ उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के छात्र जीवन से ही कर दिया था। लखनऊ विश्वविद्यालय के अपने मित्रों के साथ मिलकर उन्होंने एक हस्तलिखित पत्रिका की भी शुरूआत की थी। यह नौवाँ दशक रहा होगा। कहानी, आलोचना, व्यंग्य, संपादन आदि के क्षेत्र में किए उनके अवदान को कतई भुलाया नहीं जा सकता। श्रीलाल शुक्ल संचयिता ,चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा : रचना संचयन सहित लगभग दर्जन भर पुस्तकों का संपादन किया। ख़ास बात कि उनके दोनों शुरूआती दो काव्य संग्रह अवधी कविताओं के हैं। साहित्यिक कार्यक्रमों के संचालन का उनमें जो कौशल था, उसके हम सब क़ायल रहे हैं। लखनऊ में आयोजित 'कथाक्रम' समारोह में अकसर वे एक दो सत्रों का संचालन इस अंदाज़ में करते कि बहस को वैचारिक शिखर पर पहुँचा देते थे। वे तद्भव और कथाक्रम के सहयोगी संपादक भी रहे। कई पत्रिकाओं में वे कॉलम लिख रहे थे। वे कुछ समय तक कमलेश्वर के साथ संवाद लेखन का काम मुंबई में करते रहे लेकिन वहाँ भी अधिक समय तक नहीं रह पाए। लखनऊ में रहते हुए अख़बारों, आकाशवाणी, दूरदर्शन, उत्तर प्रदेश सूचना एवं जनसंपर्क विभाग के कुछ फुटकर काम और विभाग की पत्रिका 'उत्तर प्रदेश' में कालम लिखना यही उनकी दिनचर्या थी। वे ज़िंदगी की दुश्वारियों का रोना नहीं रोते थे। वे समझ चुके थे अब जीवन ऐसे ही गुज़ारना है, क़िस्मत में यही लिखा है सो उसका कुछ होने वाला नहीं है ।

सुशील से उनकी मौत से ठीक पाँच दिन पहले 12 मार्च को चैट और मोबाइल पर बात हुई थी । वे बहुवचन के कहानी अंक के लिए एक व्यंग्य कहानी लिखना चाहते थे हालाँकि वे हाँ करने के बाद भी संस्मरण अंक के लिए श्रीलाल शुक्ल पर नहीं लिख पाए थे। वे एक बार वर्धा आने के भी इच्छुक थे, कुछ समय मन बदलाव या घूमने के लिए। सुशीलजी ने महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय में कुछ समय अतिथि शिक्षक के रूप में जनसंचार विभाग के छात्रों

को पढ़ाया भी था। सुशील सिद्धार्थ से लखनऊ में एक प्रकाशनाधीन साप्ताहिक अख़बार के दफ्तर में पहली मुलाकात उनके सहपाठी रामबहादुर मिश्र के माध्यम से 1990 में हुई थी, जिसके बाद यह मित्रता और बातचीत चलती ही रही। औसत कद गठीला शरीर, चेहरे पर हल्की-सी दाढ़ी, हमेशा हल्की-सी मुस्कान, और अपनेपन के साथ वे किसी से भी मिलते थे और यही बात दूसरों को उनसे जोड़ देती थी।

यह वर्ष 2007 की बात है कि एक दिन इंडिया न्यूज़ साप्ताहिक के कार्यालय में था कि मोबाइल पर सुशीलजी ने ख़बर दी कि वे दिल्ली आ चुके हैं और भारतीय ज्ञानपीठ ज्वाइन कर चुके हैं उनकी आवाज़ में खुशी झलक रही थी। वे चाह रहे थे कि अब मुलाकात होना चाहिए, अभी दिलशाद गार्डन एक मित्र के घर पर ठहरा हूँ। पहली बार उनसे कवि भारतेंदु मिश्र के घर पर भेंट हुई। हम कुछ मित्र जिसमें युवा कवि कुमार अनुपम भी शामिल है, प्यार से सुशील को दादा या आचार्य कहते थे, जिस पर वे मुस्कुरा भर देते। इसके बाद तो मुलाकातें और फ़ोन पर बातें यह सिलसिला अनवरत चलता, थमता ही नहीं था। वे पूर्वी दिल्ली स्थित मदर डेरी के ठीक पीछे ध्रुव अपार्टमेंट के एक छोटे से कमरे में रहकर गुज़र-बसर करते और भारतीय ज्ञानपीठ की मामूली छोटी सी नौकरी जो कि उनकी प्रतिभा और ज्ञान के बिलकुल अनुकूल नहीं थी खुद को उसके साँचे में ढालने की कोशिश कर रहे थे। रवीन्द्र कालिया उनको भारतीय ज्ञानपीठ में संपादक बनाकर लाए थे लेकिन कुछ ऐसे कारण रहे कि सुशीलजी ने भारतीय ज्ञानपीठ छोड़ दिया। उनके व्यक्तित्व में एक बात जो कि सबसे बड़ी बाधक थी वह थी कि वे आज के चरण वंदना भरे युग में चापलूसी नहीं कर पाते थे या फिर दिन को दिन या रात नहीं कहते थे जिसका खामियाज़ा वे पूरी उम्र उठाते रहे। एक और महत्त्वपूर्ण बात यह भी थी कि किसी भी व्यक्ति से उनका रिश्ता बहुत दिनों तक निभता नहीं था उसके कारण चाहे जो भी हों।

दिल्ली आने से पहले अधिकांश लेखक उनको कथाक्रम के कथा केंद्रित वार्षिक संवाद में संचालक की भूमिका में देखते ही थे। दिल्ली आने पर शुरूआत में उनका दायरा कुमार अनुपम, प्रांजल धर और मुझ तक सीमित था। धीरे- धीरे दिल्ली के साहित्यिक समाज के सदस्यों चाहे वह यूके. एस. चौहान हों या दिनेश कुमार शुक्ल, प्रेम भारद्वाज, सुधीर सक्सेना, विवेक मिश्र, सतेंद्र प्रकाश सहित बहुतों से मुलाकात और दोस्ती हो रही थी। सुशीलजी की एक ख़ासियत थी कि एक बार उनसे जो मिल लेता उनका मुरीद हो जाता था। उनका बेलौस, फक्कड़ अंदाज चेहरे पर हल्की सी मुस्कान और साहित्य की शानदार समझ लोगों को उनका मुरीद बना देती थी । उनके पास खिल-खिल करती भाषा, शैली, सधा वाक्य विन्यास, विशेषण, उपमाएँ, खिलंदड़ापन था। पुस्तक समीक्षा तो वे पलक झपकते लिख डालते थे। साहित्य की विभिन्न विधाओं कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचना में उनका वृहद् अध्ययन था। किसी किताब का फ्लैप मैटर वे ऐसा लिखते थे कि एक शब्द इधर से उधर करने की ज़रूरत नहीं होती थी। उनकी लिखावट बहुत ही साफ सुथरी थी। सुशील के चुम्बकीय व्यक्तित्व ने कवि, कहानीकार, व्यंग्यकारों, आलोचकों, मीडियाकर्मियों सहित सभी को अपनी ओर आकर्षित किया और साहित्यिक समाज में उनकी प्रतिष्ठा बढ़ती ही गई। यहाँ एक और बात यह हुई कि दिल्ली के बहुत सारे फेसबुकिया लेखक भी लपको अंदाज़ में उनके आसपास जमा हो गए । नामवर सिंह की एक कविता है कि - 'पारदर्शी नील में सिहरते शैवाल / चाँद था, हम थे, हिला दिया तुमने भर ताल' कुछ ऐसा ही सुशील ने कर दिखाया था ।

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय की नौकरी में आने से ठीक पहले तक वे लगातार मयूर विहार फेज़ तीन स्थित मेरे घर या प्रेम भारद्वाज के घर पर आते और एकाध दो घंटे की साहित्यिक चर्चा के बाद अपने डेरे पर लौट जाते । हफ्ता दस दिन या पंद्रह दिन बीतते- बीतते वे कहते 'अरे यार कब मिलिहो बहुत दिन होय गा' फिर मेरी उनसे ज्ञानपीठ के कार्यालय या उनके घर पर मुलाकात हो ही जाती। इसी समय उनकी बातचीत 'हंस' पत्रिका के कार्यकारी संपादक के लिए हुई लेकिन शायद कम पैसों या राजेंद्रजी से बात न बन पाने के कारण वे 'हंस' नहीं जा पाए जबकि इसकी लखनऊ में घोषणा भी वे कर चुके थे। मार्च 2012 में मेरी नियुक्ति जब वर्धा के लिए बहुवचन के संपादक पद पर हुई तो वे मेरे दिल्ली छोड़कर वर्धा प्रस्थान को लेकर खासे असहमत थे और आदत के मुताबिक गुस्से में भरकर बोले जाइए मेरा साथ छोड़कर वहीं जाकर मरिए। उनका आशय था कि जब दिल्ली में अपना फ्लैट है और लिखने पढ़ने वाले व्यक्ति के रूप में पहचान है तो यहीं रहकर काम करो। वर्धा आने के बाद उनसे कभी- कभार दिल्ली जाने पर ही भेंट होती या फ़ोन पर बात होती। कई बार फेसबुक चैट पर हम दोनों ही लोग बातचीत कर लेते थे। वे बहुवचन के लिए लिखने को कहते लेकिन फिर लिख न पाते कुछ ऐसा ही हो रहा था ।

दिल्ली जैसे बेदिल शहर के साहित्यिक समाज और सक्रिय समूहों के बीच उन्होंने खासी जगह बनाई । वे प्रबंधन के भी गुरु थे लेकिन छोटे-छोटे प्रबंधन करने ही आते थे, वे किसी से भी बड़ा लाभ कभी नहीं ले नहीं पाए। एक और खासियत थी कि उन्होंने कभी किसी के सामने अपनी दुश्वारियों का रोना नहीं रोया, किसी को अपमानित नहीं किया, किसी को ठगा भी नहीं बल्कि वे खुद ही ताउम्र दूसरों की ठगी का सामना करते रहे।

नई दिल्ली स्थित भारतीय ज्ञानपीठ में आने के बाद उनको दिल्ली के साहित्यिक समाज में पर्याप्त रूप से चीन्ह लिया गया। अख़बारों में उन्होंने बड़ी संख्या में बहुत अच्छी समीक्षाएँ लिखीं। नया ज्ञानोदय में कुछ समय उनका कालम 'लिखते-पढ़ते' खूब सराहा गया। यहाँ भी वे रवीन्द्र कालिया से संबंधों में खटास के चलते इस्तीफा देकर बाहर आ गए। इसके बाद वे राजकमल प्रकाशन गए लेकिन वहाँ भी उनकी निभी नहीं। राजकमल प्रकाशन में क्या हुआ कम ही लोग जानते हैं। एक बार फिर वे बेरोज़गार थे। ऐसा नहीं कि उनकी योग्यता में कोई कमी थी बल्कि संस्थानों के मालिकों का बौनापन उन्हें झेल नहीं पाता था। 2014 में सुशीलजी ने दिल्ली को छोड़ दिया और लखनऊ चले गए। कुछ ही दिन बीते थे कि वे एक बार फिर 2015 की जनवरी में किताबघर प्रकाशन की मासिक

पत्रिका समकालीन साहित्य समाचार के संपादक बनकर आए। किताबघर प्रकाशन के स्वामी सत्यव्रत शर्मा ने उनको प्रतिभा के अनुकूल सम्मान दिया। लखनऊ से कथाकार शैलेन्द्र सागर के संपादन में प्रकाशित त्रैमासिक पत्रिका कथाक्रम के व्यंग्य कालम राग लंतरानी से उनको खासी प्रसिद्धि मिली थी। वे व्यंग्य में श्रीलाल शुक्ल को अपना गुरू मानते थे। एक बार बातचीत में उन्होंने कहा कि व्यंग्य में उनको हरिशंकर परसाई सबसे बड़े लेखक लगते हैं। कुछ समय उन्होंने पाखी (संपादक प्रेम भारद्वाज) पत्रिका में 'शातिरदास की डायरी' शीर्षक से कालम लिखा चूँकि कालम काफी तल्ख हुआ करता था, जिससे कई लोग नाराज़ हुए फिर वह बंद हो गया। अब कई पत्रिकाओं में संपादक माँगकर उनके व्यंग्य प्रकाशित कर रहे थे । 'नारद की चिंता' संग्रह प्रकाशित होने पर जब इंडिया न्यूज़ में छपी तो वे हँसे बोले –'अशोक तुमही हमका समझ सकत हव हम दोनों एकय इलाका और छोटी जगह से आईके दिल्ली मा जगह बनायन हय।' कभी- कभी वे कहते 'यार अशोक हम लोग किस्मत सेठा की कलम से लिखाय के आए हन।' जीवन में बहुत सारी विफलताओं, धोखों के बावजूद वे सदैव खिलखिलाते रहते यह सुशील जैसा नीलकंठी व्यक्ति ही कर सकता था। वे मौका मिलने पर खूब हँसी मज़ाक करते और ठहाका लगाते। जब मैं अपना कहानी संग्रह दीनानाथ की चक्की देने दिल्ली स्थित किताबघर प्रकाशन गया था तभी उन्होंने 'मालिश महापुराण' की प्रति भेंट की। इसके बाद 'मो सम कौन' एवं 'प्रीति न करियो कोय' भी प्रकाशित हुए। कभी- कभार रौ में आने के बाद वे कई महान् लोगों के व्यक्तित्व की कलई खोलकर रख देते। वे ज्ञान चतुर्वेदी को अपना व्यंग्य गुरु मानते थे जबकि वे लेखन के शुरूआती दौर में श्रीलाल शुक्ल के काफी करीब रहे। व्यंग्य लेखन में उन्होंने भाषा का जबर्दस्त कौशल दिखाया, घिसे-पिटे विषयों को छोड़कर मौलिक विषय और विविधता की दृष्टि से वे लगातार व्यंग्य विधा में प्रतिष्ठा हासिल कर रहे थे। अपने व्यंग्य लेखन पर भी जीवन के अंतिम समय में ध्यान दे पाए; पहले दे देते तो उनकी लिखी बहुत सारी कृतियाँ हमारे बीच होतीं। फेसबुक पर उनके प्रशंसकों की संख्या हज़ारों में थी। एक ओर यह सब चल रहा था तो दूसरी ओर उनका स्वास्थ्य अत्यधिक कार्य, महानगरीय ज़िंदगी के तनाव आदि उन पर भारी पड़ रहे थे। परिवार और पत्नी के लखनऊ में होने के कारण उनकी आवाजाही दिल्ली से लखनऊ लगातार चलती रहती। परिवार साथ न होने से उनका खानपान ठीक-ठाक नहीं रह गया था। हिंदी के परचूनिया प्रकाशन संस्थानों की कम पैसों की नौकरी ने उनको प्रूफ रीडर कम संपादक बनाकर खूब निचोड़ा। कामकाज से संबंधित कभी कोई बड़ा आफर न मिलने से उन्हें जैसी भी नौकरी और पैसा मिलता रहा उसको स्वीकारते रहे । हम कह सकते हैं कि एक गीत है – 'मैं ज़िंदगी का साथ निभाता चला गया, हर फिक्र को धुएँ में उड़ाता चला गया।' वे यही करते रहे । करीब तीन साल पहले उन्हें हृदयरोग ने चपेटे में ले लिया और फिर एंजियोप्लास्टी भी हुई। वे स्वस्थ तो हुए लेकिन काम करने का उनका जुनून पहले से बहुत ज़्यादा हो गया था, जिसे वे ख़राब स्वास्थ्य के बावजूद करते रहे। सुशील ने अंतिम तीन-चार सालों में जितनी तेज़ी से लेखन और संपादन का काम किया उतना काम अधिकांश लोग दस साल में शायद ही कर पाएँ। वे एक लेखक के रूप में ही जीना और मरना चाहते थे और उसे पूरी ईमानदारी और गरिमा के साथ कर दिखाया, यह उनके जीवन की बहुत बड़ी सार्थकता रही; लेकिन यह सब उन्होंने स्वास्थ्य की अवहेलना करके किया यह दुखद है। उनका न होना उनके परिवार, मित्रों और साहित्यिक समाज के लिए बहुत बड़ा नुकसान है। उनके जाने से सब कुछ खत्म हो गया है। अब तो जैसे बस उनकी स्मृतियाँ और रचा गया साहित्य ही बचा है। उनकी स्मृति को नमन करते और श्रद्धांजलि देते हुए इतना ही कहूँगा कि बहुत याद आएँगे जीनियस सुशील सिद्धार्थ........।

❒❒❒

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी
विश्वविद्यालय, पोस्ट- गांधी हिल्स,
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)
ईमेल: amishrafaiz@gmail.com
मोबाइल: 09422386554/7888048765

शिवना साहित्यिकी सदस्यता प्रपत्र

यदि आप शिवना साहित्यिकी की सदस्यता लेना चाहते हैं, तो सदस्यता शुल्क इस प्रकार है : 200 रुपये (एक वर्ष), 400 रुपये (दो वर्ष), 1000 रुपये (पाँच वर्ष), 3000 रुपये (आजीवन)। सदस्यता शुल्क आप चैक / ड्राफ़्ट द्वारा शिवना साहित्यिकी (SHIVNA SAHITYIKI) के नाम से भेज सकते हैं। आप सदस्यता शुल्क को शिवना साहित्यिकी के बैंक खाते में भी जमा कर सकते हैं, बैंक खाते का विवरण इस प्रकार है :

Name of Account : **Shivna Sahityiki**, Account Number : **30010200000313**, Type : **Current Account**, Bank : **Bank Of Baroda**, Branch : **Sehore (M.P.)**, IFSC Code : **BARB0SEHORE** (Fifth Character is "Zero")
(विशेष रूप से ध्यान दें कि आई. एफ. एस. सी. कोड में पाँचवा कैरेक्टर अंग्रेज़ी का अक्षर 'ओ' नहीं है बल्कि अंक 'ज़ीरो' है।)
सदस्यता शुल्क के साथ नीचे दिये गए विवरण अनुसार जानकारी ईमेल अथवा डाक से हमें भेजें जिससे आपको पत्रिका भेजी जा सके:

नाम :— — — — — — — — — — — — — — — डाक का पता :— — — — — — — — — — — — — — — —
— — — — — — — — — — — —सदस्यता शुल्क :— — — — — —चैक / ड्राफ़्ट नंबर :— — — — — — — —
ट्रांज़ेक्शन कोड (यदि ऑनलाइन ट्रांस्फ़र किया है) :— — — — — —दिनांक : — — — — — — — — — — —
(यदि सदस्यता शुल्क बैंक खाते में नकद जमा किया है तो बैंक की जमा रसीद डाक से अथवा स्कैन करके ईमेल द्वारा प्रेषित करें।)
संपादकीय एवं व्यवस्थापकीय कार्यालय : पी. सी. लैब, शॉप नंबर. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, म.प्र. 466001, दूरभाष : 07562405545, मोबाइल : 09806162184, ईमेल : vibhomswar@gmail.com

जो पिछले दिनों पढ़ा...

हरी मुस्कुराहटों वाला कोलाज, गूदड़ बस्ती, अभी तुम इश्क़ में हो, हसीनाबाद

सुधा ओम ढींगरा

भाई पंकज सुबीर ने पुस्तकों के बण्डल में जो पुस्तकें भेजीं उनमें 'हरी मुस्कराहटों वाला कोलाज' भी थी। गौतम की ग़ज़लें तो बहुत पढ़ती हूँ। 'पाल ले इक रोग नादान' ग़ज़ल संग्रह भी पंकज ने मुझे भेजा था। ग़ज़लों की प्रशंसिका हूँ। कई कहानियाँ भी पढ़ चुकी हूँ। पर एक फ़ौजी की कलम से लिखी हरी वर्दी वाले सैनिकों की कहानियाँ पढ़ने की जिज्ञासा इतनी तीव्र हुई कि कुछ ही घंटों में मैंने इस पुस्तक को पढ़ लिया।

हरी वर्दी का आकर्षण मुझे हमेशा रहा। स्कूल, कॉलेज में सहेलियाँ फ़ौजी परिवारों की थीं। जालंधर कैंट मेरा दूसरा घर था। मेरी सहेली रानी के परिवार की तीन पीढ़ियाँ फ़ौज में थीं। उसके दादी जी, जिन्हें हम बेजी कहते थे, हमें अपने परिवार की तीन पीढ़ियों की कुर्बानियों की कहानियाँ बड़े गर्व से सुनाया करते थे।

अमेरिका आने के बाद सबसे नाता टूट सा गया। भीतर रंज था, पर कुछ कर नहीं पाई। एक दिन अचनाक जरनल केशव पाधा, कमांडर स्पैशल फोर्सेस से मुलाकात हुई। उनकी पत्नी शशि पाधा बेहतरीन कवयित्री हैं। ऐसा लगा मेरा नाता फिर से जुड़ गया। उन्होंने फ़ौजियों पर कई संस्मरण लिखे हैं। अक्सर हमारी पत्रिकाओं में छपते हैं। उनकी पुस्तक 'शौर्य गाथाएँ' पढ़ने के उपरांत अब 'हरी मुस्कराहटों वाला कोलाज' पुस्तक पढ़ी।

'हरी मुस्कराहटों वाला कोलाज' पढ़कर कहीं आँखें नम हुईं, कभी रुई जैसी बर्फ़ के गोलों से खेलते हुए जवानों की बच्चों सी किलकारियों में मैं भी शमिल हो गई, कभी मैंने रेहाना सी वृक्ष तले खड़े होकर फौजी दस्ते का इंतज़ार किया, शायद उसके साजन का पता चल जाए।

गौतम की कहन शैली ने सरहदों पर बैठे फ़ौजियों का जीवन और वहाँ के परिवेश का ऐसा वर्णन किया है, कि पात्र जीवंत सामने नज़र आते हैं और आँखों के आगे सब कुछ घूमने लगता है।

देश और देश वासियों की सुरक्षा के लिए ठण्ड में ठिठुरते, धूप में तपते, बेस्वाद खाना खाते, परिवारों से दूर हर रोज़ चुनौतियों से जूझते, मौत से अठखेलियाँ करते जांबाज़ जवानों के छोटे-छोटे किस्से और बड़ी-बड़ी कहानियाँ गौतम ने बड़ी लगन से लिखी हैं। शब्दों और अनुभवों की अभिव्यक्ति में गज़ब की पकड़ है। कई कहानियाँ भिन्न-भिन्न पत्रिकाओं में हम पढ़ चुके हैं, पर उन कहानियों को दोबारा पढ़कर एक अलग अनुभूति हुई; जो पहले पत्रिका में पढ़कर नहीं हुई थी। शायद पुस्तक पढ़ते हुए माहौल बदल गया था, सरहद पर पहुँच गई थी।

चाहूँगी कि इस पुस्तक को हर देशवासी पढ़े, और जवानों के उस कष्टप्रद जीवन को जाने, जिसमें रहते हुए भी वे पल-पल का आनन्द उठते हैं। वीरता से दुश्मन का सामना करते हैं और मौत के साये में भी प्रेम-पत्र भेजते हैं। शादी करवाना चाहते हैं, छुट्टी का आवेदन पत्र भेजते हैं। एक दूसरे से चुहल-बाज़ी करते हैं और गोलियों से छलनी हुए शरीर के साथ हॉस्पिटल में पड़े हुए भी नर्सों से हँसी-ठट्ठा करते हैं।

सकारात्मक ऊर्जा से भरी इस पुस्तक के लेखक गौतम राजऋषि को बहुत-बहुत बधाई!!

***

किताबों का जो सेट मुझे अमेरिका भेजा गया, उसमें प्रज्ञा का उपन्यास 'गूदड़ बस्ती' भी था। नाम से उपन्यास बहुत यथार्थपरक लगा, डर था कि एक ही बारगी में शायद मैं यह उपन्यास पढ़ नहीं पाऊँगी। ऐसे उपन्यास कई बार बोझिल हो जाते हैं। पर इसे पढ़ना शुरू किया तो समाप्त करके ही उठी। बेहद रोचक, सच की कठोर ज़मीन से परिचय करवाता हुआ, जिसपर कई प्रश्न और विमर्श के पौधे उगे हुए हैं।

उपन्यास को पढ़कर जो महसूस हुआ, उसे आपके साथ साझा कर रही हूँ। यथार्थपरक और परिवेशगत उपन्यास है, ज्यों-ज्यों इसके पृष्ठों पर आगे बढ़ती गई, 'गूदड़ बस्ती' में प्रवेश कर इसमें ऐसी डूबती गई कि सुरेंद्र के साथ ही घूमने लगी। गज़ब की पठनीयता। अगर यह कहूँ कि मैं अपने बचपन, किशोरावस्था में चली गई, तो अधिक उचित होगा।

मेरे पापा डॉक्टर थे। और उनके दो क्लिनिक थे, एक शहर में, घर के पास, जहाँ हम रहते थे और जिसकी आमदनी से घर चलता था, दूसरा शहर से बाहर एक ऐसी बस्ती में जो 'गूदड़ बस्ती' की तरह ही थी, जहाँ बाल्मीकियों को छोड़ कर हर छोटी जाति के लोग यानी दलित रहते थे। ये लोग खेलों का समान बनाने वाले बेहतरीन कारीगर, जूते बनाने वाले कारीगर, फैक्ट्री वर्कर, दिहाड़ी मज़दूर, बढ़ई, धुनिया, कबीर पंथी और लोहार थे। औरतें घर में दरियाँ-खेस बुनतीं। कहने का भाव एक मेहनती बस्ती। पापा वामपंथी विचारधारा के थे, इसलिए इस बस्ती में क्लिनिक खोला, जहाँ बहुत कम दाम पर दवाई दी जाती थी, कई बार मुफ़्त दे दी जाती थी, अक्सर हर घर में कोई बिपदा ऐसी आई होती कि पैसे की किल्ल्त होती। कई बार पापा दवाई के साथ किसी मज़दूर के घर में आटे की बोरी, दूध भी भिजवाते थे। वह मज़दूर कई दिनों से भूखा होता और खाली पेट दवाई उसे नुक्सान कर सकती थी। उस इलाके में पापा कम्युनिस्ट डॉक्टर के नाम से मशहूर थे।

हरेक से हमारा परिचय था। हम उनका हर दुःख सुख बाँटते थे। परोक्ष-अपरोक्ष हमने जो सीखा उसी का परिणाम, आज मेरे हर तरह

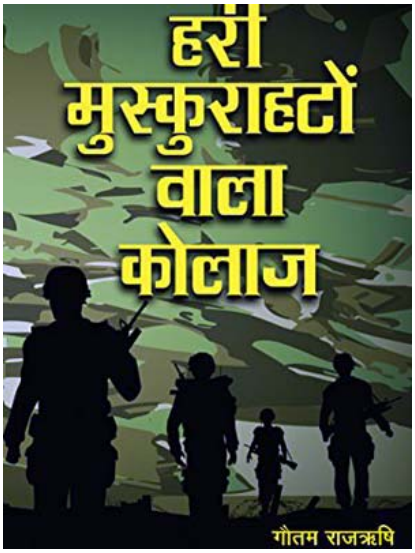

के मित्र हैं, जाति-धर्म से परे अच्छे इंसान।

आप कहेंगे, उपन्यास के बारे में कहना शुरू किया था और मैं अपनी बात करने लगी। जी यही तो उपन्यास की सार्थकता है, कि इस उपन्यास ने कितना कुछ याद दिला दिया। 'गूदड़ बस्ती' से मिलती-जुलती बस्ती से मेरा भी परिचय था। परिवेश का महीन वर्णन पात्रों की कहानियों की सहायता करता है। जिस संवेदना और गहराई से दलितों के जीवन का चरित्र-चित्रण किया है, जिस सुघड़ता से शब्दों की सिलाइयों से पात्र बुने हैं ; उनकी तड़प, पीड़ा, बेचैनी पाठक को महसूस होने लगती है। शिल्प और भाषा कसे और सधे हुए। कुशल लेखन का कमाल है कि पाठक सुरेंद्र के साथ उसकी पूरी यात्रा तय करता है। असमानता को महसूस करता है, सदियों से चले आ रहे संकीर्णता के चक्रव्यूह में अभिमन्यु सा फँसा पाता है, पर उससे निकलने का रास्ता उसे सुझाई नहीं देता।

निम्न मध्यवर्गीय परिवार के जीवन से रूब-रू होकर उनके संत्रास, पीड़ा को पाठक भोगता है, उनके साथ जीने लगता है, यह लेखक का कौशल है। इसमें वर्णित घटनाओं को रोज़ घटित होते देखते हैं। वर्ग भेद, जाति भेद की नकारात्मकता बड़ी बखूबी से चित्रित की गई है। नकारात्मकता के काले धुएँ ने सामाज की सोच को भी कलुषित कर दिया है, जिसे हटा सकती है तो सिर्फ युवा पीढ़ी, बावजूद ढेरों चुनौतियों के।

पापा ज़िंदा होते तो उन्हें यह उपन्यास भेजती, पढ़कर बेहद खुश होते और प्रज्ञा को दिल्ली जाकर बधाई देते। अब उनकी बेटी की तरफ से प्रज्ञा को बहुत-बहुत बधाई!!! उपन्यास अपने आप को पढ़ा ले जाता है, आप भी पढ़ें.....

***

पंकज सुबीर की पुस्तक 'अभी तुम इश्क़ में हो' मिली। पुस्तक मेले में इसका विमोचन हुआ था और कई मित्रों ने फ़ोन पर और ईमेल पर बताया कि उन्हें यह पुस्तक बहुत पसंद आई पर कवर उन्हें उचित नहीं लगा। मुझे 'अभी तुम इश्क़ में हो' का इंतज़ार था। पुस्तक हाथ में आते ही पहले तो इसके कवर पेज को देखती रही। देखते-देखते ही इससे इश्क़ हो गया। एक क्लॉसिक कवर, इश्क की अभिव्यक्ति का कलात्मक अंदाज़।

कहानियाँ पढ़ने का बेइंतिहा शौक है, और सबसे पहले कहानियाँ पढ़ने से ही पुस्तक की शुरूआत की। पंकज की क़िस्सागोई की प्रशंसक हूँ। हर कहानी पढ़ने से पहले कहन शैली की करामात के लिए तैयार होती हूँ। उसी मोड़ पर, मुट्ठी भर उजास, क्या होता है प्रेम...., सुनो माँडव, खिड़की, अतीत के पन्ने, मैंने कहा था... सभी कहानियाँ छोटी हैं पर इश्क़ से भरपूर और मैंने कहा था...कहानी का तो अंत ही अभी तुम इश्क़ में हो.... पर होता है। इश्क़ की उन नाज़ुक भावनाओं को इन कहानियों में गुँथा गया है, जो रूह की गहराइयों में कहीं दूर बैठी अलौकिक प्रेम का रूप धर लेती हैं। छोटी-छोटी कहानियाँ संवेगों से लबालब पाठक की रूह तक उतरती हैं। खिड़की और सुनो माँडव में हल्का सा तिलिस्म और रहस्य का पुट है पर उनकी तरफ ध्यान कहाँ जाता है, पात्रों का इश्क़ अपने में इतना समाहित कर लेता है, बस इंसान डूबता चला जाता है। कहानियों के विषय में कुछ नहीं लिखूँगी क्योंकि पढ़ने के बाद जिन अनुभूतियों का एहसास होता है, उन्हें शब्दों में बाँधना उनके साथ अन्याय करना है। आप पढ़कर स्वयं ही जान जाएँगे।

कहानियों के बाद मैंने गीत और कविताएँ पढ़ीं। कहानियों से उभर नहीं पाई थी कि गीतों और कविताओं के इश्क़ में डूब गई। जब इश्क़ होता है तो उससे भीतर कैसी उथल-पुथल होती है, इसका सुन्दर वर्णन किया है, तितली गीत में-

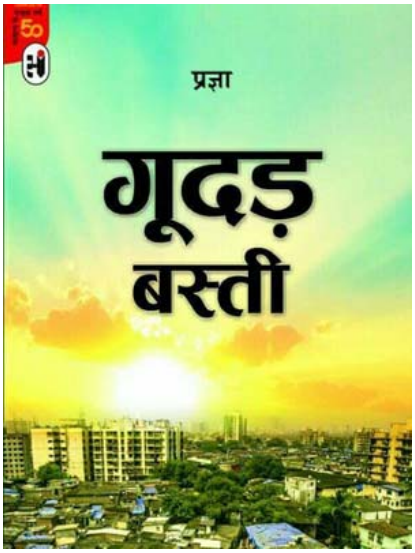

आठ पहर इक चरखा कोई चलता रहता अंदर में।
जादू-सा संगीत बसा है उस चरखे की घर-घर में।
इच्छाओं की उजली-उजली रूई के गाले लेकर।
अंदर-अंदर सूट कातता रहता तकली जैसा मन॥

चाहे यह गीत पंकज सोनी के नाटक तितली के लिए लिखा गया है, पर इसका अंतर्द्वंद्व प्रेमिका के मथते हृदय की पुकार है। इनकी कविताओं में प्रकृति के इश्क़ का भी अद्वितीय वर्णन है। प्रकृति इश्क़ के रंगों में रंग कर झूमती है, विरह में पत्ता-पत्ता, बूटा-बूटा बिखेर देती है, प्रेम की पराकाष्ठा में रो-रो कर खूब बरसती है, कभी इश्क़ में तपती है, तो कभी ठिठुरती है और फिर सृजना के खूबसूरत एहसासों में डूब जाती हैं। कविताओं का प्रेम कवर की बिम्बात्मक देहें को पार कर रूहों का हो जाता है। इसी प्रेम को मेरी आँखों ने देखा।

कविता 'अंतिम बाला' में बचपन के अबोध प्रेम की निश्छल भावनाओं को जिस तरह शब्दों का बाना पंकज सुबीर ने पहनाया है, उसे पढ़ते हुए अंतिम पंक्तियों तक आँखें छलक आईं। इन कविताओं में कहीं प्रेम और बुझे सपनों में आँखें पीली होती हैं और कहीं प्रेम करने का डर मिटता है और कहीं प्रेम के बीज पनपते हैं।

प्रेम, आशा और सपनों का कोलाज बनाती कहानियाँ, कविताएँ और ग़ज़लें रूह को इश्क़ के इंद्रधनुषी रंगों में रंग जाती हैं।

इश्क़ का नाज़ुक पल कैसे पकड़ा है

ग़ज़ल में और इसका रंग–

चलते–चलते आपने देखा था हमको बस यूँ ही
शहर में उस दिन से अपना हो गया रुतबा अलग

एक और रंग, इश्क़ की तीखी टीस–

दिल के कंधे हैं झुके हम से भी ज़्यादा
वो तुम्हारी याद भी तो ढो रहा है

वाह..... एक और अदा, जिसका रंग ही निराला है–

नहीं मानेगा कोई भी बुरा बिलकुल ज़रा भी
अभी तुम चाहे जो कह दो, अभी तुम इश्क़ में हो

चंचल ख़याल और रूह को छूता चटक रंग–

ये मन करता है बादल आकर ढँक लें चाँद को पूरा
हो जब वो पास तो फिर चाँदनी अच्छी नहीं लगती

ग़ज़लें पढ़ने और सुनने में मज़ा देती हैं और पंकज सुबीर की ग़ज़लों में ज्यों–ज्यों गहराई में जाएँ, वे भावनाओं की कई परतें खोलती जाती हैं, वे भीतर को कई रंगों में रंग कर इश्क़ के ऐसे तार बजाती हैं; जिससे ऊर्जा मिलती है, प्रेम का ऐसा राग अलापती हैं और ऐसे बीज बोती हैं ; जिससे आने वाली पीढ़ी विश्व शांति के पथ पर चल सकेगी। सपनों और आशा के स्वरों की ऐसी तान छेड़ती हैं, जो जीने के लिए महत्त्वपूर्ण है।

इस पुस्तक की कहानियाँ, कविताएँ और ग़ज़लें पढ़कर एक बात बहुत उभर कर सामने आई, वह है साँवले रंग के प्रति लेखक का आकर्षण। गोरे रंग के प्रति भारतीयों का ही नहीं, विश्व के अधिकतर लोगों का मोह है। गोरा रंग सुंदरता का पैमाना माना है। पंकज साँवले रंग के प्रति आकर्षित हैं। इस पुस्तक के इतर भी कई कहानियों में साँवली सुंदरता आई है। लगता है किसी साँवली ने काफी प्रभावित किया है।

पंकज सुबीर ऐसे रँगरेज़ हैं, जिनकी ग़ज़लों, गीतों, कविताओं और कहानियों ने इश्क़, प्रेम, प्यार और मोहब्बत के ऐसे रंग छोड़े हैं कि रूह रंग गई है और रोम–रोम सराबोर है।

***

मैं हर पुस्तक में संगीत की तरह स्वर, लय, ताल और गति को महसूस करती हूँ और जब किसी भी पुस्तक के स्वर, लय और गति मुझे बाँध लें तो वह पुस्तक पढ़कर ही उठती हूँ। विश्व पुस्तक मेले में अपने छोटे भाई पंकज सुबीर को कुछ उपन्यास और कहानी संग्रह लेकर भेजने को कहा, वह अपनी दीदी का अनुरोध कभी टालता नहीं और उसने फटाफट लिस्ट की पुस्तकों के साथ और भी कई चर्चित पुस्तकें भेज दीं।

सबसे पहले हाथ में हसीनाबाद उपन्यास आया। ओफ़्फ़! क्या कहूँ..... पहला पन्ना पढ़ते ही उपन्यास के स्वर ध्वनित हो उठे, बँध गई, कथ्य में इतनी लय और गति है कि बस पन्ने अपने आप पढ़वाते गए और मैं पूरा उपन्यास पढ़कर ही उठी। गज़ब की पठनीयता और रोचकता है। भाषा कमाल की है। बेहद सुगठित।

गीताश्री को मैं उन दिनों से जानती हूँ, जब हम दोनों नियमित ब्लागर थीं। स्त्रियों के दु:ख दर्द की साझीदार गीताश्री के लेखनी से मैं तभी से प्रभावित हूँ। आपकी कहानियाँ भी खूब पढ़ी हैं। हसीनाबाद उपन्यास गीताश्री का पहला प्रयास है। बेहतरीन प्रयास कहूँगी। उपन्यास की लय और गति को बड़ी कुशलता से सँभाला गया है, कहीं धीमा और कमज़ोर नहीं होने दिया गया।

परम्परा और विरासत के नाम पर खोखली मान्यताओं की धज्जियाँ उड़ाते उपन्यास में गोलमी का चरित्र नारी की भीतरी शक्ति का प्रतीक है। गर स्त्री चाहे तो दुनिया की कोई ताकत उसे कमज़ोर नहीं

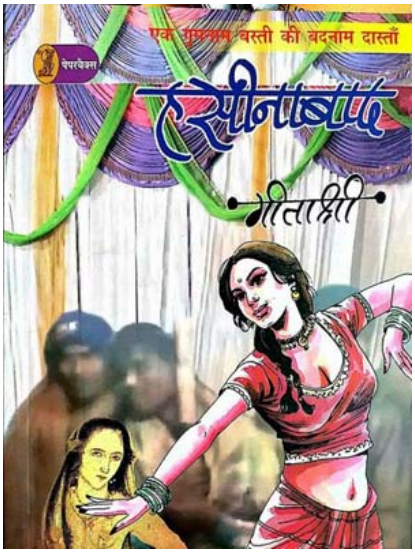

कर सकती। लोकगीतों की महत्ता को भी लेखिका ने बड़ी कुशलता से उभारा है। पंजाब, हरियाणा और हिमाचल के लोकगीतों से परिचित हूँ, पर अब बिहार की लोक परम्पराओं और लोकगीतों की जानकारी मिली, ज्ञान में वृद्धि हुई। सुंदरी की पीड़ा, गोलमी का दर्द, अढ़ाई सौ का निश्छल प्रेम गीता ने बड़ी गहराई से महसूस किया है और वह पाठकों के दिल तक पहुँचेगा, मुझे पूरा यकीन है। मेरे दिल को छू गया।

गीताश्री एक पत्रकार भी हैं अत: राजनीति का वह रूप दिखाने में सफल रही हैं; जो धिनौना है। गीता श्री की भाषा बड़ी मुखरता से अपने बात कहती है। मुद्दे को सीधे आपसे रू–ब– रू करवाती है। उपन्यास में लेखिका कुछ एक पन्नों बाद ऐसी पंक्तियाँ लिखतीं है जो उपन्यास की लय को बिखरने नहीं देतीं.....

सच की आँच बहुत देर से तेज़ हो पाती है और जब तक सुलगना होता है, गीली लकड़ी की तरह, किसी मोटे लक्कड़ की तरह, क़तरा –क़तरा ! (पृष्ठ 145) ऐसी कई पंक्तियाँ आएँगी, जगह–जगह।

कहन कौशल और शिल्प ने उपन्यास को सुघड़ता से बाँधे रखा है। भाषा ने उपन्यास को समृद्ध बना दिया है। बेहतरीन उपन्यास के लिए गीताश्री को तहे दिल से बधाई!!!

❑❑❑

101, गाईमन कोर्ट, मोर्रिस्विल
नार्थ कैरोलाइना–27560, यू.एस. ए.
फोन: +1–(919)678–9056

विमर्श

फ़ेक एनकाउंटर

प्रेम जनमेजय, अपूर्व जोशी

फ़ेक एनकाउंटर : बेहद सुकून देने वाली पुस्तक

अपूर्व जोशी

(प्रधान संपादक पाखी)

ऐसे भयावह समय में बजरिए प्रेम भारद्वाज मेरी पहुँच एक पुस्तक ऐसे हुई जो ना केवल पठनीय है बल्कि आज के दौर में बेहद ज़रूरी पुस्तकों में से एक है। पुस्तक के लेखक हैं मुकेश कुमार जो ना केवल पत्रकारिता जगत् के जाने-पहचाने नाम हैं बल्कि साहित्यकार, कवि तौर पर भी अपनी अच्छी पहचान बना चुके हैं। 'फ़ेक एनकाउंटर' नाम से मुकेश भाई की यह पुस्तक गत् वर्ष प्रकाशित हुई है। यह दरअसल नवभारत टाइम्स के ब्लॉग में प्रकाशित व्यंग्यात्मक शैली में लिए गए काल्पनिक साक्षात्कारों का सग्रंह है। लेखक को ऐसे काल्पनिक इन्टरव्यू लेने का ख़याल मीडिया के गोदी हो जाने और झूठ को सच साबित कर दिखाने के संकट चलते आया।

मुकेश कुमार इस पुस्तक की वाबत कहते हैं- ''फ़ेक एनकाउंटर यानी फ़र्जी मुठभेड़ का ख़याल अरसे से दिमाग में मँडरा रहा था। लगता था जब इतने सारे झूठ सच का मुखौटा पहनकर हमारे सामने आ रहे हैं, हमें गुमराह कर रहे हैं, सच्चाई तक पहुँचने से रोक रहे हैं तो कोई तो तरीका होना चाहिए उन्हें बेनकाब करने का। टी.वी. चैनलों और पत्र-पत्रिकाओं के साक्षात्कार भी उस सच को सामने ला पाने में नाकाम हो रहे हैं, बल्कि अक्सर तो वे खुद ही झूठ गढ़ने और उसे प्रचारित करने का साधन बन जाते हैं। मीडिया में इतने साल रहने की वजह से मैं देख समझ रहा था इस खेल को और मन करता था कि इनके बरक्स असली बातचीत रख दूँ। लेकिन लेखों की शक्ल में या सीधे -सीधे कुछ लिखना न तो पठनीय होता है और न ही उसमें उतना कुछ रहा जा सकता था जो फे़क एन्काउंटर के फॉर्मेट में संभव है। जैसे लोहे को लोहा काटता है, वैसे ही फ़ेक को फ़ेक से ही काटा जा सकता है। इसलिए समाजिक और व्यग्यांत्मक इंटरव्यू का सहारा लिया।''

मुकेश कुमार के इन सभी साक्षात्कारों के पीछे ज़बरदस्त मेहनत झलकती है। वे ऐसे सवाल पूछते हैं जो असल में पूछे तो जाने चाहिए लेकिन कोई ऐसा साहस नहीं कर पा रहा है। उदाहरण के लिए मुकेश कुमार प्रधानमंत्री की पत्नी जशोदा बेन से सवाल कर रहे हैं 'आपने यह भी कहा कि अगर मोदी जी चाहेंगे तो आप उनके साथ दिल्ली में रहना चाहेंगी।' जशोदा बेन का उत्तर है- 'हाँ, कहा छे, लेकिन इसमें क्या गलत कहा छे। छूँ उनकी पत्नी छूँ। उन्होंने मने तलाक नहीं दिया छे और मैंने भी उन्हें नहीं छोड़ा छे। चुनाव के फार्म में भी वे मारू नाम का उल्लेख कराँ छूँ। चाहे कानून के हिसाब जाऊँ, चाहे हिंदू शास्त्रों के हिसाब से, छूँ उनकी पत्नी छूँ। ऐसे में जो म्हारी जगह छे क्या वह मुझे नहीं मिलनी चाहिए? क्या ये एक स्त्री के साथ अन्याय नहीं छे?'

इस नकली साक्षात्कार के जरिए मुकेश कुमार वह लिखने का साहस कर गए जो शायद ही आज के दौर के बड़े, राष्ट्रभक्त, टी.वी. चैनलों में गला फाड़ चिल्लाने वाले 'गोस्वामी' कर पाएँ। इसी प्रकार वित्त मंत्री अरुण जेटली और उनका फ़ेक एन्काउंटर खास दिलचस्प है जिसमें वे जेटली जी से सवाल करते है, 'आपके पास दो महत्त्वपूर्ण मंत्रालय हैं। मगर आपकी बीमारी की वजह से उनका कामकाज ठप्प पड़ा हैं?' सुनिए जेटली जी का फ़ेक उत्तर 'आपने बहुत अच्छा प्रश्न लिया है। हालाँकि सब यही सवाल उठा रहे हैं। मगर ऐसा जानकारी के अभाव में हो रहा है। आजकल तो मोदीक्रेसी में कोई मंत्री मंत्रालय नहीं चलाता, बल्कि खुद प्रधानमंत्री चलाते हैं। सारे नौकरशाह पीएमओ से निर्देशित होते है। इसलिए मंत्रियों को ज़्यादा परेशान नहीं होना पड़ता। उनकी केवल उपस्थिति अनिवार्य होती है। ये नया सिस्टम है, अभी आप लोगों को इसे समझने में वक्त लगेगा।'

अन्ना हजारे एवं उनका इन्टरव्यू भी ज़बरदस्त है। मुकेश कुमार अन्ना से कहते हैं- ''जी मैं पत्रकार हूँ, आपका इन्टरव्यू लेने आया हूँ।'' अन्ना का जवाब है- 'यहाँ लोग तरह-तरह के भेष में आते हैं, कोई समाजसेवी, कोई क्रांतिकारी, कोई आंदोलनकारी, कोई साधु, कोई पत्रकार, अब मेरा किसी पर भरोसा नहीं रहा। बस मुझे यूज़ करने के लिए आते हैं और यूज़ करने के बाद फेंक देते है। मुझे सब लोगों पर डाऊट होने लगा है।'' निश्चित ही यदि अन्ना से सही में पूछा जाए तो उनका उत्तर यही होगा। इंडिया अगेंस्ट करप्शन के कर्ता-धर्ताओं ने जिस प्रकार अन्ना को गन्ना बना, रस चूस कर फेंक दिया, उसकी पीड़ा का परिचायक है यह फेक इन्काउंटर।

गोदी मीडिया के इस दौर में मुझे यह पुस्तक बेहद सुकून देने वाली लगी। शायद अपना फ्रस्टेशन इससे दूर हुआ है। साधुवाद मुकेश कुमार को कि उन्होंने व्यंग्य के जरिए उन सच्चाइयों को नंगा करने का साहस किया जो काम तो दरअसल लोकतंत्र के चौथे स्तंभ का है लेकिन जिससे वर्तमान समय में ऐसा कुछ कर पाने की ना तो अपेक्षा बल्कि रह गई है। ना ही आस...।

(पाखी पत्रिका से साभार)

***

बी 107, सेक्टर 63, नोएडा,
गौतमबुद्ध नगर, उप्र 201307
फ़ोन : 120 4070300

व्यंग्य का नया एनकाउंटर

प्रेम जनमेजय
(प्रधान संपादक व्यंग्य यात्रा)

(विश्व पुस्तक मेले में इस पुस्तक पर आयोजित कार्यक्रम में प्रेम जनमेजय जी व्यंग्य यात्रा के आने वाले अंक को लेकर अपनी व्यस्तता के कारण शामिल नहीं हो सके। उनकी अनुपस्थिति में उनका यह संदेश पढ़ा गया।)

व्यंग्यकार तो स्वयं में एनकाउंटरर है। कबीर के समय से निर्भीक होकर एनकाउंटर पर एनकाउंटर कर रहा है। यह दीगर बात है कि आजकल के व्यंग्यकार आधे कबीर हो गए हैं। एक दृष्टि से देखने लगे हैं इसलिए एकपक्षीय एनकाउंटर करते हैं। दूसरे पक्ष का एनकाउंटर करने का साहस नहीं है। ऐसे साहस के लिए व्यपाक, गहरी एवं निराकार दृष्टि की आवश्यकता होती है। जब आप साकारवादी होते हैं तो अपने प्रभु की भक्तिभाव में अपने लिए ही कह पाते हैं कि प्रभु जी मेरे अवगुण चित न धरो। प्रभु के अवगुणों पर लेशमात्र भी कहने का साहस ... हरि हरि। कबीरी परंपरा के व्यंग्यकार तो वर्षो से एनकाउंटर करते रहे हैं। ऐसे में उनकी टाँग भी टूटी, तबादले भी झेले। राजनीति की अनीति के जितने एनकाउंटर व्यंग्यकार ने किए हैं उतने किसी टी वी चैनल ने न किए होंगें। ये इन एनकाउंटरों का परिणाम है कि जो गाँधी टोपी या फिर खद्दरधारी कभी सम्मान का प्रतीक होते थे ... किसका प्रतीक हो गए, आप सब सर्वज्ञ जानते ही हैं।

एक शब्द है अपरिहार्य कारण। यह ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग कर आप कारण बचाने से बच जाते हैं। मेरा कारण अज्ञात नहीं है। पंकज सुबीर मेरे इस कारण उपजी अनुपस्थिति को बेहतर समझ सकते हैं। पंकज ही क्या लघु पत्रिका के बोझ का मारा हर संपादक इसे समझ सकता है। जिस प्रिंटर को कल 'व्यंग्य यात्रा' की प्रतियाँ लेकर आना था, उसने आज आने की घोषणा कर दी। भुक्तभोगी जानते हैं कि लघु पत्रिका निकालने का दोषी पीर बावर्ची भिश्ती आदि आदि होता है। और व्यंग्य यात्रा जैसी पत्रिका जिसके साधन अति लघु हैं और आकर अति दीर्घ। यह अंक भी 132

पृष्ठ का है। हाथ कंगन को आरसी क्या और पढ़े लिखे को अंग्रेज़ी क्या- कल व्यंग्य यात्रा का इसी मंच पर इसी समय लोकार्पण है, आकर देख लें।

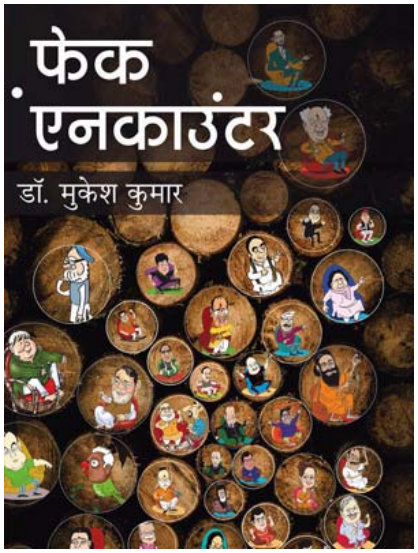

अब मैं स्वप्रकाश से मुकेश प्रकाश पर आता हूँ। अपने ऊपर बहुत प्रकाश डाल लिया, अब मुकेश के फ़ेक एनकाउंटर पर डालता हूँ। आप तो जानते ही हैं कि व्यंग्यकार बहकता बहुत है, अनेक क्षेपक जोड़ता रहता है। और मैं हूँ सोने में सुहागा -वय से वृद्ध व्यंग्यकार।

पिछले दिनों मुकेश कुमार के फ़ेक एनकाउंटर पर एक गोष्ठी हुई थी। इसमें उदय प्रकाश, ओमथानवी, प्रियदर्शन आदि ने अपने विचार प्रकट किए थे। इस संगोष्ठी में इस कृति की भरपूर प्रशंसा हुई। मैंने व्यंग्य यात्रा के लिए भेजी इस रपट को पहले पढ़ा और इसकी प्रशंसा से आतंकित हो किताब को बाद में पढ़ा। मेरा आलोचक और पाठक धर्म सुविचारों को पढ़कर आतंकित हो गया। आप तो जानते ही हैं कि धर्म आजकल कैसे-कैसे आतंकित कर रहा है। फिर पंकज सुबीर का आतंकी आग्रह कि भाई साहब आपको इस पर बोलना है। मित्रों मैं अनपढ़ आलोचक नहीं कि बना लिखे बोल जाऊँ इसलिए लिख रहा हूँ जिसे कोई पढ़ देगा।

इस संगोष्ठी में उदयप्रकाश ने एक सार्थक बात कही थी कि आज के समय में व्यंग्य लिखना जोखिम भरा काम है। मेरे विचार से आज के समय में साहित्य में सच को उजागर करना बहुत जोखिम का काम है। मुकेश ने यह जोखिम भरा काम किया है। व्यंग्य के प्रति उनकी सार्थक सोच उन्हें यह जोखिम करने का साहस देती है। वे व्यंग्य का हथियार की तरह प्रयोग करते हैं। उनके पसंदीदा व्यंग्यकार परसाई हैं। परसाई की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं- 'परसाई भाषा से खेलते नहीं बल्कि परिस्थितियों एवं पात्रों में व्याप्त विडंबनाओं तथा पाखंडों को उधेड़ते हुए व्यंग्य करते हैं। उन्हीं को पढ़ जाना कि व्यंग्य के माध्यम से कड़वी से कड़वी बात कैसे सहजता से दिलचस्प अंदाज़ में कही जा सकती है। ये भी समझ आया कि व्यंग्य लेखन के माध्यम से कैसे वे बातें भी लिखी जा सकती हैं जो आम तौर पर परदे के पीछे रह जाती हैं।' मुकेश ने परसाई के लेखन से यही प्रेरणा ग्रहण कर पर्दे के पीछे के अनेक चेहरे नंगे किए हैं।

फ़ेक एनकाउंटर व्यंग्य लेखन में एक अलग तरह का प्रयोग है। हिंदी में व्यंग्य की दशा और दिशा को लेकर अनेक साक्षात्कार लिए और दिए हैं पर व्यंग्यात्मक शैली में लिए गए इंटरव्यू का यह पहला प्रयोग। हमारे समय का हर चर्चित चेहरा- चाहे वह राजनीति, फ़िल्म, कला, साहित्य आदि का हो उघाड़ा गया है। यह व्यंग्य कृति हमारे समय में व्याप्त विसंगतियों का एक दस्तावेज़ है। राजनीतिक चेहरे अधिक हैं और होगें ही क्योंकि विसंगतियाँ भी तो वहीं अधिक हैं। इससे यह पता चलता है कि मुकेश हमारे समय को कितनी बारीक और पैनी निगाह से देख परख रहे हैं। पर इस तरह के विषयों पर लिखने के ख़तरे हैं। ये इंस्टेंट लिटरेचर की तरह हो जाते हैं। कालांतर में संदर्भविहीन होने के कारण व्यंग्य सपाट हो जाता है। आज के खान, अदनान, लालू आदि कालांतर में भुलाए भी जा सकते हैं और तब इनका व्यंग्य टिप्पणी भर रह जाएगा।

इस व्यंग्य कृति पर विस्तृत चर्चा होनी चाहिए। मैंने भी विस्तृत लिखा है। आज का यह मंच इतने विस्तार से कहने का नहीं है। अभी इतना ही। इस मंच का आभार कि उसने इस कृति को पढ़ने को प्रेरित किया। मुकेश को बधाई।

❑❑❑

73, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए 3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली 110063,
मोबाइल 9685458072

पेपर से पर्दे तक... (भाग-6)

सिनेमा एक कला और तकनीक

कृष्णाकांत पण्ड्या

(कृष्ण कांत पण्ड्या एक जाने-माने फ़िल्म निर्देशक हैं, जिन्होंने पूर्व में कई फ़िल्मों में सह-सम्पादन का कार्य किया। पश्चात् सहायक निर्देशक के रूप में, 'थोड़ी सी बेवफाई', 'बुलंदी', 'अहिस्ता-आहिस्ता', 'दिल आख़िर दिल है', 'पिघलता आसमान', 'झूठा-सच', 'लव-86' जैसी फ़िल्में कीं।

फ़िल्म 'सूर्या' और 'पुलिस-पब्लिक' के मुख्य सहायक निर्देशक एवं 'हत्या' व 'थोड़ा तुम बदलो थोड़ा हम' के एसोसिएट निर्देशक के रूप में कार्य किया। उन्होंन भारतीय फ़िल्माकाश में बतौर निर्देशक अपनी पहली ही फ़िल्म 'पनाह' में एक सशक्त व संवेदनशील फ़िल्मकार की जगह स्थापित कर ली। तत्पश्चात् फ़िल्म 'बेदर्दी', 'क्योंकि हम दीवानें हैं' (रिलीज बाकी) निर्देशित की। इसके अलावा उन्होंने कई टीवी सीरियल्स का भी निर्देशन किया, जिनमें 'पृथ्वीराज चौहान', 'जय श्री कृष्ण' और 'चितौड़ की रानी पद्मीनी का जौहर' प्रमुख हैं।

हालिया उनकी निर्देशित-सम्पादित-पट्कथा लिखित फ़िल्म 'बियाबान-द कर्स बाम विमन' को राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म फेस्टिवल्स में काफी पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं और यह फ़िल्म शीघ्र ही प्रदर्शित होने वाली है। जिसकी कहानी-संवाद एवं एक गीत पंकज सुबीर ने लिखे हैं। हाल ही में श्री पंड्या द्वारा बनाई गई कुछ लघु फ़िल्मों को भी फ़िल्म उत्सवों में पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।)

प्रिय पाठकों, जैसा कि मैंने इस धारावाहिक लेख के प्रारम्भ में फ़िल्मों के सिनेमा घर तक पहुँचने में मुख्यत: 4 पड़ाव कहे थे। प्री प्रोडक्शन, प्रोडक्शन, पोस्ट पोडक्शन और रिलीज़।

इससे पहले के अंकों में मैंने प्री प्रोडक्शन के अन्तर्गत बुनियाद स्वरूप लेखन पर विस्तृत कहा, जिसमें कॉन्सेप्ट या कहानी, फिर रीढ़ की हड्डी की तरह पटकथा और सम्वाद पर फ़िल्मों के उदाहरणों के साथ बहुत सारी जानकारी प्रदान की। किसी भी फ़िल्म की पूरी स्क्रिप्ट में कहानी को फ़िल्म के पर्दे पर लाने के लिए सीन-दर-सीन सम्वादों के साथ लिखे होते हैं। और कलाकारों की गतिविधि, कैमरा मूवमेन्ट के साथ तक लिखी होती है।

उसमें, समय, मौसम, प्रकाश क्रम और वेश-भूषा के साथ, साज सज्जा अनिवार्य तो नहीं पर, अगर वर्णित हो तो सोने पे सुहागा होता है। मैं जब स्क्रिप्ट लिखता हूँ तो शूटिंग पर मेरा और सबका काम आसान करने के लिए हर आवश्यक वस्तु लिख देता हूँ या फिर अगर कोई दूसरे लेखक होते हैं, तो उनसे मेरी यही हिदायत होती है कि उपन्यास जैसा वर्णन लिख कर दें अगर हो सके तो। अब तो स्क्रिप्ट के लेखन के साथ-साथ, हर सीन के शॉट्स की फ्रेमिंग के स्केच तैयार किए जाते हैं, कौन सा पात्र कैमरा की फ्रेम में किस पोज़ीशन में है और केमेरा भी कहाँ और किस लेन्स के साथ है इस कार्य को स्टोरी बोर्ड बनाना कहते हैं।

इससे पूरी फ़िल्म की दृश्यावली का अन्दाज़ा मिल जाता है और ये भी कि हर सीन के कितने शॉट्स होंगे। शॉट्स के बारे में वापस बता दूँ। किसी भी दृश्य का वो हिस्सा या टुकड़ा जब केमेरा शुरू होता है और बन्द होता है। इसे और इस तरह समझें कि जब डायरेक्टर सीन के एक हिस्से की भावना, सम्वाद या किसी चरित्र की क्रिया या प्रक्रिया कैमरे में लेता है, उसे शॉट कहते हैं। ये शूट शब्द की हो चुकी या होने वाली क्रिया है। अब ये शॉट एक बार में सही हो जाए या 10-20-30 या इससे भी ज़्यादा बार में ओके हो जाए ये काफी कारणों पर निर्भर करता है जिसे मैं आपको जब हम प्रोडक्शन के अध्याय में आएँगे तब और बारीकी से बताऊँगा और इसी 1-10-20-30 को 'टेक' कहते हैं। मतलब 'लेना'।

स्टोरी बोर्ड साथ दिए इन दो फोटो में दो अलग-अलग सीन के 3-3 फ्रेम हैं। ये सिर्फ उदाहरण स्वरूप हैं। फोटो नम्बर 1 में लड़की के पीछे लड़का भाग रहा है। अब कोई भी किसी के पीछे एक ही कारण से भागेगा, चोरी। अब चोरी या तो वस्तु की हो या दिल की हा, हा, हा, हा! अब आप भी मुस्कुरा दीजिए, आपका क्या जाएगा, इतनी गंभीरता भी ठीक नहीं, ये बोझ है। हाँ तो फोटो नम्बर 1 की पहली कैमरा फ्रेम में हमने सिर्फ लड़की को सामने से भागते हुए दिखाया है, जो कि करीब फुल फिगर में है। अब स्टोरी बोर्ड की इस फ्रेम का मतलब है कि अमुक दृश्य को प्रभावी तरीके से फ़िल्माने के लिए पहला शॉट इस तरह की मूवी फ्रेम बनाकर लिया जाएगा। इस फ्रेम में पीछे लोग धुँधलके में नाच रहे हैं, तो कैमरा में लेंस ऐसा लगाकर शॉट लिया जाएगा कि जिससे उपरोक्त फ्रेम जैसा दिखे। फ्रेम की पृष्ठभूमि इसलिए धुँधली रखनी है कि जिससे दर्शक भागती हुई लड़की पर फोकस कर सके जो फ्रेम में आगे की तरफ दिख रही है। फ्रेम में जो दिख रहा है उसकी वृहदाकृति पर्दे पर नज़र आएगी। ऐसे ही दूसरी फ्रेम में लड़की के करीब लड़का दौड़ रहा है, लड़की के पीछे इस फ्रेम में दोनों के शरीर का आधा भाग ही दर्शाया गया है। और पार्श्व में लोग नाच रहे है। अब तीसरी फ्रेम में कैमरा कहीं ऊँचाई पर रखा गया है, अब चाहे वो क्रेन पर हो, पहाड़ी पर हो या पेड़ पर, जो भी सुविधाजनक हो और प्रभावोत्पादक हो। इन तीनों फ्रेमों में कार्य एक ही है भागने का पर कैमरा तीन स्थानों में तीन प्रकार के लेन्स द्वारा रखा गया है। तीसरी फ्रेम के पार्श्व में नाचने वाले लोग नहीं हैं क्यूँकि भागने वाले लड़का-लड़की नाच वाले स्थान से जा चुके हैं। ये तीन हिस्से तीन शॉट कहलाएँगे। पर सीन पूरा नहीं हुआ है। सीन तो नाच-गाने, उनकी बातचीत से शुरू

होकर, भागने से लेकर कहाँ-कहाँ जाएगा ये सब स्क्रिप्ट में लिखा होता है। इस प्रकार पूरी फ़िल्म में ऐसे 1000, 2000 या ज़्यादा शॉट्स हो सकते है। एक्शन यानी की मार-धाड़ वाली फ़िल्म में ज़्यादा। तो ये हुआ फ़िल्म के लेखन और स्टोरी बोर्ड के बारे में आज के दिनों में निम्न लेखक गण मुख्य हैं, जो अच्छा भी लिख रहे हैं और व्यवसायिक भी- सुभाष कपूर, अलंक्रिता श्रीवास्तव, नीरज वोरा, दिलीप झा, अभीजीत जोशी, युनूस सजावल, रजब अली, राहुल मोदी आदि।

जैसे ही कहानी का चयन होता है बड़े निर्माता-निर्देशक मुख्य कलाकारों को कहानी और प्रोजेक्ट के बारे में बता उन्हें बुक कर लेते हैं, यूँ कहिए साइन कर लेते हैं। अब आज के दिनों में मुख्य हीरो पार्टनरशिप में आ जाते हैं, फिर प्रोजेक्ट पर पैसा लगाने वाली और रिलीज़ करने वाली कम्पनियाँ साथ में जुड़ने लग जाती हैं और 50 करोड़ से लगाकर 200/250 करोड़ तक की बजटिंग वाली फ़िल्मों का काम शुरू हो जाता है। घबराइये मत 50 लाख से 10/15 करोड़ वाली भी फ़िल्में बनती हैं और अच्छा व्यवसाय कर लेती है। बस एक छलाँग लगाने के हौसले की ज़रूरत है।

मुख्य कलाकार साइन होने के पहले या साथ-साथ निर्माता, डायरेक्टर, राइटर या टाइटर्स, संगीतकार, गीतकार, फोटोग्राफर, साउन्ड रिकोर्डिस्ट, एडिटर (सम्पादक) आदि को साइन करता है। साथ-साथ गानों की सिटिंग शुरू होती है, जिसमें स्क्रीन प्ले में लिखी गई सिचुएशन पर गाना तैयार किया जाता है। सिचुएशन से मतलब होता है गाने के पहले कहानी क्या कही गई है, या गाने के बिलकुल पहले क्या सीन हुआ है और गाना ख़तम होने के बाद वापस कहानी कैसे शुरू होगी? अगर स्क्रीनप्ले में गाने के दौरान भी अगर कहानी चलती है तो और भी अच्छा उससे आगे क्या और कैसे होगा ये जिज्ञासा बनी रहती है। अब गाना अगर पार्श्व में बजने वाला है, तो वो अब तक कहानी में उभरी भावनाओं या किसी एक भावना को और उभारने वाला होगा और अगर गाना रोमांटिक है तो आपको कल्पना लोक में प्यार में सराबोर करने वाला होगा और आपके साथ आई प्रेमिका या पत्नी का

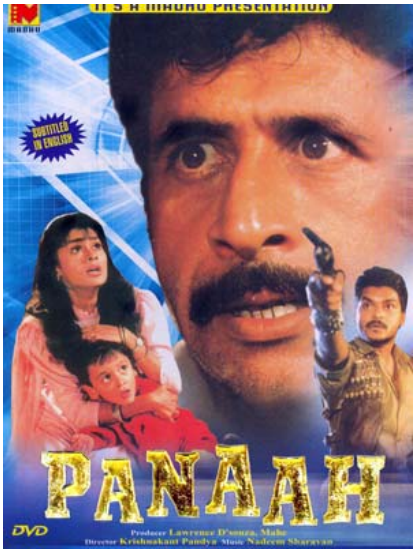

हाथ दबा कर उसे देखकर मुस्कुरा देंगे। वो भी आपकी मुस्कुराहट में साथ देकर अपना सर प्यार में आपके कंधे पर रख कर 'आप ही उसका जीवन हो' महसूस करेगी।

आइटम साँग है अगर तो, नृत्य मुद्राओं से आपका मनोरंजन होगा। उसमें हीरो-हीरोइन को बचाने के लिए संघर्ष करता नज़र आएगा तो आप उत्तेजना में उसे जल्दी पहुँचने के लिए मन में सोचते-सोचते कुर्सी के आगे आ जाएँगे। है ना, भावनाओं का बहाव और उसका मज़ा, नकली घटनाओं के प्रस्तुति करण से?

आप याद कीजिए मेरी ही फ़िल्म 'पनाह' के क्लाईमेक्स में जब खलनायक उस रात के बाद बच्चे की सारी जायदाद के मालिक बन जाने की खुशी में नृत्य का मज़ा ले रहा होता है और चारों नायक बच्चे को जल्लाद से बचाने के लिए संघर्षरत होते हैं, और जैसे-जैसे जल्लाद बच्चे के नज़दीक पहुँचता है तनाव बढ़ता है, डर लगता है कि तीन मंज़िल नीचे बावड़ी में ढाई साल का बच्चा अकेला बैठा है। जैसे ही नसीरूद्दीन शाह अपने तीन साथियों के साथ बच्चे को बचाते हैं, सिनेमा घर में तालियाँ बज उठती है। इस गाने में तीन दृश्यों को आपस में सम्पादित किया गया है, जिसे इन्टर-कट कहते हैं। इस तरह की सिचुएशन स्क्रिप्ट में लिखी होती है और नहीं भी। जैसा कि ये क्लाइमेक्स 'पनाह' में लिखा नहीं गया था, इसे मैंने लोकेशन देख कर बनाया था। वैसे फ़िल्मों में इस तरह के क्लाइमेक्स काफी आए हैं। इसे हम फार्मूला भी कहते हैं जो सफल रहता है। अभी-अभी ऐसा 'शिवाय' फ़िल्म में आया था।

सिचुएशन पे गाना लिखना बहुत मुश्किल होता है। ये इशारों-इशारों में गहरी बात सभी तरह के दर्शकों को समझाने जैसा है। महासागर से मोती निकालने जैसा काम फ़िल्म निर्माण के हर डिपार्टमेंट का होता है।

या तो गीत पहले लिख लिया जाए या लिखा हुआ सिचुएशन के लायक हो तो उस पर धुन बनाई जाती है। अगर धुन गीत की भावना को ज़्यादा अच्छे ढंग से उभारने वाली हो तो गाना सभी को पसन्द आएगा लिखे हुए गीत पर धुन बनाने का उदाहरण अभी जो याद आ रहा है वो है सदाबहार गाना 'कभी-कभी' फ़िल्म का टाइटल गाना। जिसे साहिर लुधियानवी जी की किताब से लिया गया था और उस गीत पर भारत के प्रामाणिक प्रसिद्ध संगीतकार ख़य्याम साहब ने जो धुन बनाई उससे ये कहना कठिन हो जाता है कि क्या पहले रचा गया धुन या गीत इतना एक-दूसरे में गुँथे हुए लगते हैं, गीत और धुन। ऐसे कई उदाहरण हैं। ज़्यादातर तो धुन पर ही गीत लिखने का चलन है। जिस तरह किसी भी तरह की कला के रचने का तरीका होता है वैसे ही गीत-संगीत का होता है पर अब रिकार्डिंग के तरीकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन आ चुके हैं। पहले बड़े-बड़े एकोस्टिक हॉल में सारे साज़िन्दे अलग-अलग ग्रुप में बैठ कर एक म्यूजिक कन्डक्टर की मदद से पूरी धुन के अलग-अलग भागों की रिहर्सल करते हैं, जिसमें अलग-अलग विभागों के अलग-अलग सब-कन्डक्टर भी होते हैं, जैसे वायलियन सेक्शन जिसमें 25 से लगाकर 80 या सौ तक वाद होते हैं। रिदम सेक्शन जिसमें ढोलक, तबला, डफ़, मृदंग, परवावज, चाँग और अलग-अलग प्रान्तों की रिदम के विविध वाद्य यन्त्र आवश्यकतानुसार बजाए जाते हैं। उन्हें पूरे गान में कब-तक, क्या-क्या बजाना है, सब कन्डक्टर बताता है। ऐसे स्ट्रिंग सेक्शन होता है जिसमें सितार, सन्तुर, गिटार, तानपुरा आदि और भी तरह के वाद्य होते हैं। फिर कोई विशिष्ट एकल वाद्य होते हैं, जैसे शहनाई, सन्तुर, सितार, तार शहनाई, बंसी, बैग पाइपर, क्लेरेनेट, सेक्सोफोन वीणा और भी बहुत से वाद्य यन्त्र बजाए जाते हैं। इस तरह की रिकोर्डिंग में संगीतकार धुन बनाने के बाद

अपने सहायकों और अरेन्जर्स के साथ गाने की साज-सज्जा करता है। वो गाने के भावों के हिसाब से वाद्य यन्त्र चुनते हैं, गाने की गति (टेम्पो) सेट करते हैं। टेम्पो की बड़ी अहम भूमिका होती है। जैसे अगर रोमेन्टिक गाना है और अगर वो गाना नृत्य का नहीं है तो उसकी गति मद्धम होनी चाहिए, जैसे 'दिल से' फ़िल्म का सुपर हिट गाना लें,

दिल से रे, दिल से रे
दिल तो आख़िर दिल है ना,
मीठी-सी मुश्किल है ना,
पिया, पिया, जिया जिया,
जिया ना जिया ऽऽऽऽऽ
दिल से रे......

इस गाने की अगर गति तेज़ कर दी जाए, चाहे ज़रा-सी भी हो तो इसकी नज़ाकत, अदा और भाव सभी कुछ गड़बड़ हो जाएगा और इसका फ़िल्म में असर खत्म तो होगा ही सुनने में भी ख़राब लगेगा। ये मेरी आने वाली अवार्डेड फ़िल्म 'बियाबाँ'- 'द कर्स बाय विमन' के गाने में भी हुआ था। संगीतकार ने उस गाने का टेम्पो 72 पर बजाकर सुनाया (ये टेक्निकल नम्बर होता है जो ताल की गति को दर्शाता है।) तो गाना चलत में हो गया जबकि मुझे ठहराव में चाहिए था। तब इसे 68 पर करवाया जो की एकदम सही हो गया, उससे उस गाने की गम्भीरता शब्दों के हिसाब से पुनः आ गई। इस गीत को पंकज सुबीर जी ने लिखा है। ऐसे ही अगर, 'चल छैंयाँ छैंयाँ छैंयाँ छैंयाँ', गाने की गति कम कर दी जाए तो आम श्रोता या दर्शक के पैर या उँगलियाँ मस्ती में नहीं थिरकेंगे।

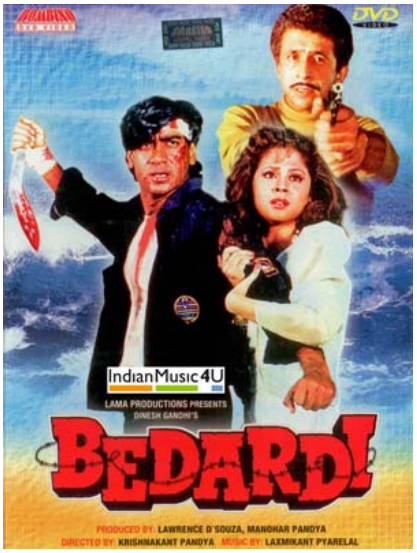

गाने की गति सेट करने के साथ पूरे गाने में कहाँ-कहाँ और कब-कब कौन से वाद्य कितने-कितने समूह में बजेंगे यह तय किया जाता है। इनकी धुनें सेट की जाती हैं। गाने के शुरू के म्यूज़िक को इन्ट्रो म्यूज़िक कहते हैं। फिर बोल के साथ मुखड़ा आता है जैसे 'बेबी को बेस पसन्द है' मुखड़ा है। उसके बाद पहला इन्टरल्यूड म्यूज़िक बनाया जाता है जो गाने में फ़िल्म की कहानी के हिसाब से भी हो सकता है और सामान्य भी हो सकता है फिर पहले अन्तरे के बारे पर म्यूज़िक बनता है। ऐसे ही सारे अन्तरे बनाए जाते हैं और आख़िर में गाने की समाप्ति का संगीत होता है। इन सारे संगीत के टुकड़ों की लिपी लिखी जाती है और सारे साज़िन्दों के सामने स्टेन्ड पर आवश्यकतानुसार क्लिप से लगाई जाती हैं। उसमें सुर, लय और धुन लिखी होती है जिसे पढ़ते हुए साज़िन्दे बजाते हैं। इन सबको मुख्य कन्डक्टर अपने हाथों के इशारों से निर्देश करता है कि कब-कब कौन-कौन सा ग्रुप बजाना प्रारम्भ करके कितना बजाएगा और रुकेगा और फिर बजाएगा। इन सबकी रिहर्सल के बाद रिकोर्डिस्ट अपने हिसाब से सारे वाद्य यन्त्रों के समूहों को लकड़ों पर लगी गद्दियों के पार्टिशन्स से अलग-अलग करवाता है जिससे ध्वनियाँ आपस में टकराकर गलत ध्वनि पैदा ना करें। फिर वो सारे साज़ों के रिकार्ड करने की लेवलिंग सेट करता है संगीतकार के निर्देशन में। लेवलिंग मतलब कौन सा साज़ या साज़-समूह किस वोल्यूम पर कब-कब बजेगा, इसके लिए रिकोर्डिस्ट नोट्स बनाता है।

साथ-साथ जब गायक आता है या आते हैं तब संगीतकार उनको हार्मोनियम पर उनसे गाने की हिर्सल करवाते हैं। उनके पास भी गाने के नोटेशन्स और गीत लिखे होते है। हेडफोन्स करीब-करीब सभी साज़िन्दों, अरेन्ज़र्स और म्यूज़िक कन्डक्टर्स के पास होते हैं। गायकों को गाने का इशारा देने के लिए एक वायलिन बजाने वाला अलग होता है, जो गायकों की तरफ अपना चेहरा करके पूरा गाना (बोल का हिस्सा, यानी की गीत) बजाता है, जिसे गायक अपने कानों में हेडफोन्स लगाकर उसे फालो करते हुए सारा संगीत सुनते हुए गाते हैं। एक-दो रिहर्सल पूरे संगीत के साथ होती हैं। इसके बाद, इतनी देर से बज रहे साज़ों की वापस फाइन-ट्यूनिंग की जाती है, मतलब कि उनके उतर गए सुरों को, तारों को वापस चढ़ाया जाता है। रिदम सेक्शन के तबले, ढोलक आदि को कसा जाता है, फिर इष्ट देवों का ध्यानकर, नारियल फोड़ कर, सारे दरवाज़ों को अंदर से बंद कर गाना रिकार्ड करने का अनाउन्समेंट होता है और सभी 100-150 संगीतज्ञ और टेक्निशियन्स एक साथ गाने की रिकार्डिंग करने में लग जाते हैं। अब इसमें अगर किसी भी, एक भी आदमी की ज़रा-सी चूक होती है तो पूरा गाना शुरू से आख़िर तक वापस बजाया जाता है, संगीतकार की बारीक पकड़ और कानों से गलत सुर छूट नहीं सकता। करीब एक बार से लगाकर 10-12 या 15 बार में जाकर एक गाना पूरा होता है।

संगीतकार लक्ष्मीकान्त-प्यारेलाल जी के साथ मुझे कार्य करने का काफी मौका मिला जब मैं सहायक निर्देशक था तब भी और जब मैं निर्देशक बना तब भी। मेरी फ़िल्म 'बेदर्दी' जिसमें अजय देवगन और नसीरूद्दीन शाह मुख्य भूमिका में थे, उसमें लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल जी का संगीत था और आनन्द बक्षी जी के गीत थे। प्यारेलाल जी इतने जीनियस हैं कि 150-200 साजिन्दों में से एक वायलियन बजाने वाले ने थोड़ा गलत बजा दिया जो कि 70 वायलिन बजाने वालों के समूह में बैठा था, तो उन्होंने उसे इंगित करके पकड़ा और सही बजाने की हिदायत दी। आदरणीय राजकपूर साहब की किसी फ़िल्म के गाने की रिकार्डिंग का किस्सा है ये। तब राजकपूर साहब ने उनका लोहा माना और बहुत तारीफ़ की जिसे मैं आपके साथ साझा कर रहा हूँ।

इतनी बारीकी से ध्यान मग्न होकर सिद्धि प्राप्त करने जैसा है फ़िल्म संगीत का कार्य। ये तो तबकी बातें हैं जब सभी एक साथ एक बार में पूरे गाने की रिकार्डिंग करते थे और किसी एक की गलती से सभी को वापस बजाना या गाना पड़ता था। है ना सच्ची साधना का काम? पर आज संगीत और वाद्य यन्त्र सब कुछ कम्प्यूटराइज़्ड और ऑन लाइन हो गया है। ये एकदम से भी नहीं हुआ है। इसे होने में करीब 15 साल लगे हैं, 1995 से 2010 तक में सारा स्वरूप ही बदल गया है, फ़िल्म निर्माण के हर क्षेत्र में।

जैसे-जैसे नई टेक्नोलॉजी आती गई पुरानी के साथ जुड़ते-जुड़ते पूरी तरह पुरानी को हटा कर उसने अपना साम्राज्य स्थापित करके म्यूज़िशियन्स (वादक कलाकारों) को घर बिठा दिया। कभी-कभार जब लाइव म्युज़िक इन्स्ट्रूमेन्ट की ज़रूरत होती तो ही म्यूज़िशियन्स को बुलाया जाता है बाकी सारा काम एक छोटे से कमरे या छोटे-छोटे स्टूडियो में होने लग गया है जिसमें सिर्फ 10-12 लोग ही बैठ सकते हैं, दो भागों में। एक में रिकार्डिस्ट और उसका स्टाफ, साथ में संगीतकार, निर्माण और निर्देशक अपने स्टाफ के साथ और काँच की बड़ी खिड़की के उस तरफ के कमरे में गायक या फिर दो-तीन म्यूजिशियन बस आज के दौड़ में बहुत ही कम बड़े स्टूडियो हैं, क्यूँकि अब सारे साजों की आवाज़ें सीधे साइजर को बजाकर MIDI (Musical Instruments Desucaintferface) की वजह से सम्भव हो गई है। जिन्हें संगीतकार ख़ुद बजाकर रिकॉर्ड कर लेता है और VSTI से प्रोग्रामिंग करके पूरे गाने का संगीत और रिदम तैयार कर लेता है फिर अगर कुछ खास वाद्यों की ज़रूरत हो तो कलाकारों को बुलाकर जहाँ-जहाँ ज़रूरत हो एक-एक को घंटों के हिसाब से बुलाकर रिकार्ड कर लेते हैं। फिर गायक अगर एक से ज़्यादा हो तो एक-एक करके बुलाकर जितने टुकड़ों में पूरे गाने को चाहे वैसे गवा कर रिकार्ड कर लेते हैं, उन्हें हेडफोन में संगीत प्ले कर देते हैं। इस सब के बाद भी अगर कुछ और संगीत के टुकड़े या आवाज़ों को कोई विशेष अन्दाज़ देना हो तो वो सब कम्प्यूटर की मदद से कर लिया जाता है। जैसे की रोबोटिक अन्दाज़ आजकल बहुत चल रहा है।

ये क्रान्ति बड़े सफल तरीके से ऑस्कर अवार्ड से सम्मानित प्रसिद्ध संगीतकार ए.आर. रहमान लेकर आए ऐसी मेरी जानकारी है। मुझे स्वयं कई सालों पहले जब ये पता चला कि एक ही वाद्य यंत्र और कम्प्यूटर की मदद से छोटे से कमरे में गाने की रिकार्डिंग होने लगी है तो असम्भव-सी लगने वाली बात से बाज्जुब का पारावार नहीं रहा था। और अब तो गायक दूसरे शहर के रिकॉर्डिंग रूम में गाकर अपनी आवाज़ भेज दिया करते हैं।

तो भारतीय फ़िल्म संगीत ने सिनेमा

हाल में, साज़िंदों के पर्दे के पास बैठकर लाइव बजाने से लगाकर शूटिंग में साज़िन्दों द्वारा कैमरे के पीछे बैठ कर बजाने (जिसमें कलाकार का गायक होना आवश्यक था।) से लेकर प्लेबेक सिंगिंग की एक साथ रिकार्डिंग से आज इन्टर नेट द्वारा और टुकड़े-टुकड़े में इलेक्ट्रोनिक इन्स्ट्रूमेन्ट और सोफ्टवेयर्स की प्रोग्रामिंग से रिकार्डिंग तक का सफर तय किया है। है ना इन्ट्रेस्टिंग सफ़र और गाना बनाने से लेकर रिकॉर्ड करने तक की विधियाँ? आपको पसन्द आई होंगी? मुझे तो शुरू-शुरू में भी और अब भी बड़ी उत्सुकता और जिज्ञासा रहती है।

फ़िल्म संगीत को लेकर कुछ किस्से मेरे साथ हुए। हुआ यूँ कि एक फ़िल्म मैं निर्देशित कर रहा था जिसमें आदरणीय संगीतकार ख़याम साहब को मैं लेना चाह रहा था। हिम्मत तो ज़रूरत से ज़्यादा कर ली थी पर ठान लिया सो कर लिया। फ़ोन लगाया और अपना परिचय दिया। मैं फ़िल्म आहिस्ता-आहिस्ता, दिल आख़िर दिल है और थोड़ी सी बेवफाई में सहायक निर्देशक था और इन तीनों फ़िल्मों में ख़य्याम साहब का संगीत था। फिर मैंने उनसे फ़ोन पर ही फ़िल्म की कहानी के बारे में संक्षेप में बताया। बुनियादी तौर पर वो एक भावुक कहानी और उसके लिए बतौर संगीतकार ख़य्याम साहब बहुत ही उपयुक्त थे। ये सब मैंने उनसे कहा उन्होंने दो बातें साफ-साफ कह दीं। एक तो एक गाने की वो अमुक फीस लेंगे और दूसरी जो उनके किरदार और मिजाज़ पर सही जाती है और वो ये कि उनके काम में मेरी कोई दखलंदाजी नहीं होगी। यहाँ तक कि गीतों में भी। मैंने तुरन्त उनकी बात मान ली, क्यूँकि एक तो उनका 'हाँ' कर देना ही बहुत बड़ी बात थी और उससे अहम बात थी कि जो व्यक्ति अपने काम में पारंगत हो वो किसी की भी दखलंदाज़ी बर्दाश्त क्यूँ करेगा, इसे मैं भली-भाँति जानता हूँ और वो भी इसलिए कि हमने भी अपने काम में अपने आपको गुरुकुल की शिक्षा की तरह कम नहीं तपाया है। पर डायरेक्टर की कल्पना अनुरूप ही सभी की रचना होनी चाहिए, अगर डायरेक्टर अपना काम बख़ूबी जानता हो और उसे उस फ़िल्म के लिए क्या चाहिए स्पष्ट पता हो तो उस टीम में चाहे कितना भी बड़ा रचनाकर्ता या कलाकार हो तो भी डायरेक्टर को उनसे अपना काम लेना आना चाहिए, बगैर हिचक के, उनका सम्मान रखते हुए। मेरे साथ कुछ ऐसा ही हुआ। एक गाने का कोई हिस्सा ख़य्याम साहब के ही किसी पुराने गाने से मिल रहा था, जो कि स्वाभाविक था और सात सुरों में ही संगीत का महासागर समाया हुआ है, पर मुझसे रहा नहीं गया, और उनकी शर्तों के अनुरूप चलना मेरा उनके प्रति सम्मान सूचक भी था, तो मैंने उनके पुत्र श्री प्रदीप जी को फ़ोन पर ये बात कही। बहुत ही सहज और सरल हृदय वाले प्रदीप जी ने मेरी इस भावना को उनकी माँ प्रसिद्ध गायिका और ख़य्याम साहब की सहायक जगजीत कौर जी से कही, उन्होंने मेरी बात को समझा और मैंने देखा कि रिकार्डिंग के दिन उन्होंने धुन को थोड़ा बदल दिया था जिसमें वो मिलान नहीं था। मैंने प्रदीप जी से ये भी कहा था कि ख़य्याम साहब को ये मत कहना कि मैंने ये कहा है। हाँ, एक और शर्त उन्होंने पहली मुलाकात में रखी थी वो ये कि वो गानों की जो धुन बनाएँगे वो सीधे रिकॉर्डिंग में ही सुनने को मिलेगी, जबकि हर संगीतकार धुन बनाने के बाद घर बुलाकर सुनाते हैं और ठीक नहीं लगे तो दूसरी भी बनाते हैं। ख़य्याम साहब की ये बात भी मैंने मान ली थी, पर उनको पूरी फ़िल्म की कहानी सुनाने के बाद, बहुत-सी बातचीत के बाद उनको मुझ पर विश्वास होने लगा कि मैं फ़िल्म अच्छी बनाऊँगा और गानों को प्रभावी ढंग से पिक्चराइज़ करूँगा। और एक दिन अचानक प्रदीप जी का फ़ोन आता है और मुझे बहुत

बड़ी खुशी के साथ ताज्जुब हुआ। ख़य्याम साहब ने गानों की धुन सुनने के लिए बुलाया है। उन्होंने हारमोनियम पर दो गाने सुनाए। मेरे खुशी के मारे, भावुकतावश रोंगटे खड़े हो गए- मैं मंत्रमुग्ध हो गया। इतनी अच्छी धुनें वाह!!! सिर्फ एक गीत के मुखड़े के बोल मुझे नए नहीं लगे, तो सकुचाते हुए पर उनसे कह दिया। उन्होंने गीतकार से कहकर बदलवा दिए। सच्चे कलाकार नारियल की तरह होते हैं, बाहर से कठोर और अन्दर से नरम।

एक और प्रेरणादायक किस्सा कहता हूँ। मेरे निर्देशन में बनी पहली फ़िल्म पनाह के बाद प्रज़ेन्टर दिनेश गाँधी ने मुझसे पूछा ''आप अगली फ़िल्म में संगीतकार लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल और गीतकार आनंद बक्षी के साथ काम कर लेंगे? उनसे गाने बनवा लेंगे?'' मेरा आत्मविश्वास और फ़िल्म लाइन में की गई तपस्या की वजह से मैंने उन्हें तुरन्त कहा, कि ''दिनेश भाई आप मुझे अगर किसी फ़िल्म के लिए दिलीप कुमार साहब और राजकुमार साहब साथ-साथ दे दीजिए तो मैं आपको अच्छी और व्यावसायिक फ़िल्म बनाकर दे दूँगा।'' उन्होंने शायद अगले ही दिन मुझे लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल जी से 'बेदर्दी' फ़िल्म के लिए मिलवाया। इस फ़िल्म में मैं पहली बार अजय देवगन और नसरूद्दीन शाह को साथ लेकर आया था। तो इस फ़िल्म के पहले गाने की जब धुन बन गई तब प्यारेलाल जी ने मुझसे कहा कि गाने की जो सिचुएशन मैंने बताई थी उसे मैं विगतवार बारीक बातों और गाने की गतिविधि के बारे में लिख कर दूँ। मैं नया ही था और ये तीनों दिग्गज लोग, भारत के महान् और प्रसिद्ध संगीतकार-गीतकार, जिनके मशहूर गाने सुनकर मैं जवान और प्रौढ़ हुआ, आज उनसे मुझे फ़िल्म के संगीत पर काम करना था। घर आकर मैंने चार पेज में उस गाने के पहले और बाद के सीन के साथ हीरो-हिरोइन के चरित्र चित्रण, पूरी क्रिया और गतिविधि को लिखकर उन्हें दे दिया। उस गाने के एक हिस्से में नायक-नायिका को प्यार के लिए आशीर्वाद देने परियाँ सीन के बीच में उपस्थित होता हैं और बीच में ही अदृश्य हो जाती हैं। ऐसी कई बातें लिख कर दीं और ये भी लिखा कि गाने में परियों की उपस्थिति के लिए कोरस (समूह) आवाज़ें चाहिए। प्यारेलाल जी गाने में संगीत की कम्पोजिंग और रचना करते हैं। संगीत से पूरा माहौल बनाते हैं। सारा पढ़ने के बाद उन्होंने कहा, ''अच्छा है, पर एक बात है, ज़्यादातर डायरेक्टर गाने के लिए अपनी ज़रूरतें बता देते हैं कि ये चाहिए, वो चाहिए, पर फ़िल्म में वैसा कुछ नज़र नहीं आता।'' मैंने कहा, ''प्यारे भाई! (उन्हें सब इसी तरह कहते हैं।) मैं पूरी कोशिश करूँगा।'' और घर आ गया। फ़िल्म की ट्रायल (रिलीज के पहले फ़िल्म निर्माण की पूरी टीम जब फ़िल्म देखती है।) के बाद मैंने हिम्मत कर के प्यार भाई से पूछा कि उनको खासकर वो गाना कैसा लगा? उन्होंने मुस्कुराकर कहा, ''जैसा गाना रिकॉर्ड हुआ है वैसा ही पिक्चराइज़ किया है तुमने।''

ये इतने महान् कलाकार बड़े सच्चे और सहृदय होते हैं, जिन्हें अपने काम से ही जीतकर आशीष प्राप्त कर सकते हैं। ऐसा ही आनन्द बक्षी जी के साथ बड़े मधुर वाकये हुए। 'बेदर्दी' फ़िल्म के एक आइटम साँग के लिए, गीत लिख कर उन्होंने मुझे अपने घर बुलाया और कहा कि, ''देख, ये तेरे लिए मैंने 8 अन्तरे लिखे हैं, बाकी जिसको जितने चाहिए होते हैं उतने ही लिखकर देता हूँ।'' सही भी है। उन्होंने बड़े-बड़े निर्माता-निर्देशकों के साथ काम किया है, उनके साथ अच्छा तालमेल हो जाने के बाद उनके लिए भी ज़्यादा वेरायटी में, ज़्यादा पसन्दगी से वो लिखते ही रहे होंगे, पर मैं पहली बार उनके साथ काम कर रहा था और नया भी था। उस हिसाब से मेरे लिए ये बहुत बड़ी बात थी। मैंने उन आठों अन्तरों में से मेरी पसंदीदा पंक्तियाँ यहाँ से वहाँ से चुनकर तीन अन्तरे बनाने को उनसे विनती की। उन्होंने उनके भावों और क्रिया के हिसाब से गीत की व्याकरण को ध्यान में रखकर उसी समय तीनों अन्तरे लिख दिए। 'बेदर्दी' के प्रदर्शन के काफी समय बाद अचानक एक दिन बक्षी जी का फ़ोन आता है वो भी इतने समय में पहली बार, ज़िन्दगी की समझ देखिए और इतने ऊँचे मुकाम पर पहुँच कर भी, नया कुछ मुझे जैसी नई पीढ़ी के साथ (तब नई पीढ़ी का ही था मैं।) काम करने की उनकी ललक देखिए कि वो कहते हैं, ''मैं आनन्द बक्षी बोल रहा हूँ, देख आ किसी दिन घर पे, ऐसे ही बैठते हैं, कुछ नया लिखा है, बहुत अच्छा है, तुझे पसन्द आएगा, आजा कभी भी।'' मैंने तुरन्त दूसरे दिन का समय लिया और उनके घर चला गया। और क्या कहूँ आपसे, किसी नए गीतकार की तरह अपनी रचनाएँ सुनाने लगे, जबकि उस टाइम मेरे पास कोई काम नहीं था, मतलब कि कोई फ़िल्म नहीं थी। उन्होंने ढाढस बँधाते हुए कहा था, ''कोई बात नहीं, ये तो मैंने ये जानने के लिए सुनाए थे कि तुझे कैसे लगे? कोई रोमेन्टिक फ़िल्म बना और ये गीत ले ले।'' मैं अवाक रह गया। कितनी सरलता, सहजता? सही में ''नमन्ति फलिनो वृक्षाः नमन्ति गुणीनो जनाः।'' वृक्ष वही झुकते हैं जिन पर फल लगते हैं। इसी तरह जो गुणवान व्यक्ति हैं वो नम्र होते हैं। उसके बाद वो सारे गाने एक बहुत ही सफल फ़िल्म में आए और बहुत ही अच्छे चले। मुझे अफसोस रहा कि उन्हें मैं नहीं ले सका पर खुशी इतनी हुई कि आज भी उस मुलाकात को याद कर मन जोश से, उमंग से भर जाता है कि आनंद बक्षी जी जैसे महान्, गीतकार और महान् व्यक्तित्व से मेरा कम समय में इतना अपनापन रहा, खासकर उनकी तरफ से।

..... तो दोस्तों संगीत में कहीं यही तो आठवाँ सुर नहीं होता?

इस बार के लेख में मैंने अंग्रेज़ी शब्दों का ज़्यादा प्रयोग किया है वो इसलिए कि फ़िल्म लाइन में कुछ टेक्निकल बातों के लिए यही शब्द रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में समा गए हैं और उनके उपयोग से ही वो बातें आसानी से समझ में आ जाती हैं, जिनसे शायद आप भी वाक़िफ़ होंगे ही। फिर भी मैं क्षमा चाहूँगा। अब क्यूँकि आगे जब-जब मैं फ़िल्म निर्माण के दूसरे अध्यायों को खोलूँगा तो ऐसे शब्दों का ज़्यादा चलन होता रहेगा और आपको मुझे क्षमा करते रहना पड़ेगा।

इस तरह गीत-संगीत में जिसने नएपन की प्यास और सच्ची, बात को मिठास से कहने का आठवाँ सुर नहीं सीखा वो क्या ख़ाक संगीत समझेगा.... क्रमशः

❒❒❒

2603, ऑबराय स्पलेन्डर
मजास डेपो के सामने, जे.वी.एल.आर.
अंधेरी(पूर्व), मुम्बई 400060
फ़ोन 02228387112

टीवी-फ़िल्म समीक्षा के बहाने

निमकी मुखिया सीरियल दूसरा राग दरबारी

वीरेन्द्र जैन

हिन्दी टीवी चैनल स्टार भारत पर इन दिनों 'निमकी मुखिया' नाम से एक सीरियल चल रहा है। इस सीरियल के लेखक निर्देशक हैं ज़मा हबीब जो वैसे तो थियेटर आर्टिस्ट से लेकर अनेक चर्चित भोजपुरी फ़िल्मों और सीरियलों के लेखक रहे हैं किंतु उक्त सीरियल के बाद उनकी ख्याति बहुत फैलने वाली है। मैं बहुत ज़िम्मेवारी के साथ कह रहा हूँ कि इस सीरियल की कहानी को दूसरी 'राग दरबारी' कहा जा सकता है और 48 वर्षीय ज़मा हबीब को मनोहर श्याम जोशी की तरह का पटकथा लेखक माना जा सकता है। 'बुनियाद' 'हमलोग' और 'कक्काजी कहिन' जैसे सीरियलों में जो स्थानीयता के सहारे देश व व्यवस्था के दर्शन हुए हैं, वही गुण 'निमकी मुखिया' में विद्यमान हैं।

इस सीरियल में यथार्थ के साथ ऐसे घटनाक्रमों से कहानी आगे बढती है जो कल्पनातीत हैं और दर्शक की जिज्ञासा को एपीसोड दर एपीसोड बढ़ाते रहते हैं। कहानी का विषय तो अब अज्ञात नहीं है किंतु उस पर कथा का विषय मोड़ दर मोड़ ऐसे बुना गया है कि रागदरबारी उपन्यास की तरह पेज दर पेज व्यंग्य आता रहता है। कहानी एक ऐसी लड़की को केन्द्रित कर के बुनी गई है जिसकी माँ किसी के बहकावे में आकर अपने तीन छोटे बच्चों को छोड़ कर फ़िल्मों में गाने के लिए मुम्बई चली जाती है, और असफल हो जाने पर आत्महत्या कर लेती है। लड़की का भावुक और भला पिता रामवचन जो छोटी मानी जाने वाली जाति का है, उन जातियों के हाशिए पर बनाए गए मुहल्ले में रहता है व किराए से यूटिलिटी वाहन चलाने का काम करता है। वह अपने बच्चों को बेहद प्यार से पालता है जिसमें बड़ी बेटी निमकी तो बहुत ही लाड़ली है जिसकी हर इच्छा पूरी करने में वह कोई कोर कसर नहीं छोड़ता। आज के युवाओं की तरह निमकी के सपने भी हिन्दी फ़िल्मों से प्रभावित होकर बने हैं और वह खुद को दीपिका पाडुकोण समझती है व किसी सम्पन्न परिवार के इमरान हाशमी जैसे सुन्दर युवा से शादी का हैसियत से बाहर का सपना पालती रहती है। शोले की बसंती की तरह मुँहफट और मुखर निमकी बीमारू राज्यों की शिक्षा व्यवस्था की तरह नकल और सिफारिश से डिग्री अर्जित करती है, व अपने मुहल्ले के गरीब पड़ौसी सहपाठी से अपने काम निकलवाती है किंतु अपनी महत्त्वाकांक्षाओं के कारण उसे प्रेम के योग्य नहीं समझती।

पंचायती राज आने के बाद आम गाँव की तरह क्षेत्र के मुखिया पद के दो दावेदार है जिनमें एक वर्तमान मुखिया तेतर सिंह और दूसरा नाहर सिंह। भूमिहार जाति के तेतर सिंह पूर्व जमींदार जैसे परिवार से हैं व बड़ी कोठी में समस्त आधुनिक सुख सुविधाओं के साथ दबंगई से रहते हैं। वे अपनी कम शिक्षा के कारण अपने वकील दामाद को घर जमाई बना कर सरकारी लिखा-पढ़ी का काम करवाने के साथ विधायक बनने की महत्त्वकांक्षा पूरी करने के इंतज़ाम में भी लगाए हुए हैं। उनके तीन लड़के हैं जिनमें से एक जो विवाहित है ईमानदारी से कोई धन्धा करना चाहता है किंतु अनुभवहीन होने के कारण असफल रहता है इसलिए तेतर सिंह उसे कोई भाव नहीं देते। दूसरा लड़का बब्बू सिंह ऐसे परिवारों में विकसित होने वाले आज के युवाओं की तरह ही लम्पट और गुस्सैल है व अपनी पारिवारिक परम्परा के अनुसार सारा काम बन्दूक व पिस्तौल से हल होने में भरोसा करता है। राजधानी के नेता से संकेत मिलता है कि विधायक का पद उसे ही मिलेगा जिसके पास मुखिया का पद होगा इसलिए वे बब्बू सिंह को मुखिया बनवा कर खुद विधायक का पद जुगाड़ना चाहते हैं। अपनी सम्पन्नता, दबंगई, ऊँची जाति, और वर्षों से ज़मींदारी व मुखिया पद भोगते वे इसे सहज भी समझते हैं। चुनाव घोषित होने से पहले ही वे क्षेत्र में बब्बू सिंह के बड़े-बड़े पोस्टर और कट आउट लगवाते हैं जिसे देख कर निमकी उनमें अपनी कल्पना के नायक की छवि देखती है।

दूसरी ओर तेतर सिंह के विरोधी गुट का नाहर सिंह इस बार मुखिया पद हथियाने के प्रयास में जुटा हुआ है और वह राजनीतिक कौशल से मुखिया बनना चाहता है, इसलिए छोटी जाति के मुहल्ले में भी अपने सम्पर्क बनाए हुए है। इसी बीच एक विधुर बीडीओ जिसके एक छोटी बच्ची है, गाँव में पदस्थ होता है व रामवचन के वाहन को कार्यालय हेतु स्तेमाल करने के अहसान के बदले अपने घर का इंतजाम करने की सेवाएँ लेता है। इसमें खाना पहुँचाने का काम निमकी को करना होता है। वह एक ओर तो आधुनिक सुख सुविधाओं वाले घर में जाकर अपने सपनों को दुलराती है तो दूसरी ओर बीडीओ की छह सात वर्ष की मासूम अकेली बच्ची के साथ परस्पर स्नेह बन्धन में बँध जाती है।

घटनाक्रम इस तरह आगे बढ़ता है कि मुखिया का पद छोटी जाति की महिला के लिए आरक्षित हो जाता है और तेतर सिंह

अपनी घरेलू नौकरानी को पद के लिए उम्मीदवार बना देता है। दूसरी ओर उसका विरोधी नाहर सिंह अपनी ओर से निमकी को मुखिया पद के लिए उम्मीदवार बनवा देता है व अपनी ओर से पैसा खर्च करता है। उसे छोटी जाति के घाट टोला के लोग एकमुश्त समर्थन देते हैं व बीडीओ भी उनका साथ देता है। परिणामस्वरूप निमकी मुखिया बन जाती है व तेतर सिंह के सपनों को ठेस लगती है और वह लगभग विक्षिप्त सा हो जाता है क्योंकि उसके टिकिट मिलने की सम्भावनाएँ भी थम जाती हैं। आवेश में वह मुखिया पद घर में बनाए रखने के लिए अपने बेटे बब्बू सिंह की शादी निमिकी से करने का फैसला कर लेता है जिसका भरपूर विरोध उसके घर के सारे सदस्य करते हैं किंतु बन्दूक के ज़ोर पर वह अपनी बात इस आधार पर मनवा लेता है कि निमकी केवल मुखिया पद को घर में रखने व विधायक का टिकिट लेने भर के लिए बहू बना रहे हैं। निमकी और उसके परिवार को यह कह कर बहला देता है कि बब्बू सिंह को निमकी से प्यार हो गया है, व वे ज़िद कर रहे हैं इसलिए वह छोटी जाति में शादी कर रहे हैं व शादी का पूरा खर्च भी उठा रहे हैं।

सीरियल में हर घटनाक्रम चौंकाता है, व हँसाता है। पात्रों के अनुरूप कलाकारों का चयन और उनके द्वारा भूमिका का निर्वहन इतना परिपूर्ण है कि कथा यथार्थ नज़र आती है। भोजपुरी भाषा, मधुबनी की शूटिंग, पात्रों का चयन, पारिवारिक सम्बन्धों, प्रशासन व व्यवस्था की सच्चाइयाँ, क्रोध, जुगुप्सा, और हास्य तीनों पैदा करती हैं। बीडीओ की छोटी बच्ची समेत सबका अभिनय इतना मँजा हुआ है कि किसी कलाकार विशेष की प्रशंसा की जगह निर्देशक की प्रशंसा ही बार बार उभरती है। इतना ज़रूर है कि केवल हिन्दी फ़िल्मों के प्रभाव में गाँव को कुछ अधिक ही चमकीला प्रस्तुत कर दिया गया है जहाँ पर ग़रीबी और बेरोज़गारी दिखाई नहीं देती। सीरियल देखने लायक है और इसमें फ़िल्म के रूप में रूपांतरण की सम्भावनाएँ मौजूद हैं।

❑❑❑

2/1 शालीमार स्टर्लिंग, रायसेन रोड,
अप्सरा टाकीज के पास भोपाल [म.प्र.]
462023, मोबाइल: 09425674629

पुस्तक चर्चा

चम्बल में सत्संग

समीक्षक -अंसार कंबरी
लेखक : अशोक अंजुम
प्रकाशक: सरस्वती प्रकाशन

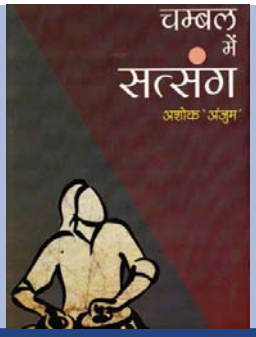

भाई अशोक अंजुम के 'चम्बल में सत्संग' दोहा संग्रह में पूर्व प्रकाशित राष्ट्रधर्म गौरव सम्मान से सम्मानित एवं बहुचर्चित दोहा संग्रह 'प्रिया तुम्हारा गाँव' पर पद्मभूषण गोपाल दास 'नीरज', डॉ. आनंद सुमन सिंह, आर.पी. शर्मा 'महर्षि' आदि अनेक विद्वानों की लघु समीक्षाएँ हैं तथा अशोक अंजुम के परिचय के साथ 'चम्बल में सत्संग और मैं .... भूमिका से प्रारम्भ 96 पृष्ठ की पुस्तक में अशोक अंजुम के कई सौ दोहे व रेखाचित्र दिए गए हैं। दोहा हिन्दी काव्य की अत्यन्त प्राचीन, प्रभावी एवं सशक्त विधा है। इस विधा में कवि अपनी उत्कृष्ट अनुभूति एवं उन्नत अभिव्यक्ति द्वारा काव्य का ऐसा उदात्त रूप प्रस्तुत करता है जिसके अंतर्गत तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों को साकार करते हुए मानव-मनोवृत्तियों की अनेक प्रतिमाएँ चित्रित होती हैं। आत्मनिरीक्षण और शुद्धाचरण की प्रेरणा देते संत कबीर के दोहों से लेकर देश-प्रेम स्वतंत्रता, स्वाधीनता और देशाभिमान की भावना जागृत करते भारतेंदु जी के दोहों तक इस काव्य-विधा ने अपनी दीर्घ सृजन-यात्रा तय की है। इस यात्रा में कविवर संत तुलसी, रहीम तथा बिहारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इधर समकालीन कवियों ने भी विचार बोझिल गद्य कविता की शुष्कता से मुक्ति के लिए दोहा मात्रिक छंद को अपनाना श्रेष्ठकर समझा है, जैसा कि अशोक अंजुम ने अपनी भूमिका में भी स्वीकारा है। आज समकालीन कविता के अनेक प्रतिष्ठित हस्ताक्षर इस विधा में भावाभिव्यक्ति कर रहे हैं। इसी शृंखला को आगे बढ़ाते हुए समकालीन कविता के सशक्त हस्ताक्षर भाई अशोक अंजुम का प्रस्तुत संग्रह 'चम्बल में सत्संग' भी आता है, जिसमें आम आदमी के विविध जीवन संघर्षों, विसंगतियों, विषमताओं और अंतर्विरोध तथा भक्ति, नीति एवं प्रेम सम्बन्धी भावनाओं को कवि ने अपने दोहों में प्रस्तुत किया है। पिंगलशास्त्र की दृष्टि से देखा जाए तो कवि अशोक अंजुम के दोहों में त्रिफल, द्विफल और गति की बड़ी विशेषता है। जिस बात को अन्य कवि 8 पंक्तियों तथा 210 शब्दों के माध्यम से कहता है, श्री अंजुम ने उसी को 2 पंक्तियों और 15 शब्दों में कहने का सफल प्रयास किया है। वस्तुत: दोहा सबसे संक्षिप्त मात्रिक पदान्त छंद है, जिसके 4 चरण होते हैं तथा विषम 13 और सम में 11 मात्राएँ होती हैं। श्री अंजुम ने दोहों में इस शास्त्रीय मान्यता का सम्पूर्ण निर्वाह किया है तथा हिन्दी खड़ी बोली को भाषानुकूल प्रांजलता प्रदान करते हुए दोहों में प्रयोग किया है। भाषा के इस सहज प्रयोग के कारण उनके दोहे अर्थगाम्भीर्य रखते हुए भी सरल व सरस प्रतीत होते हैं ऐसे ही सैकड़ों दोहे संग्रह को सुशोभित कर रहे हैं और रेखाचित्र उनमें चार-चाँद लगाने का काम कर रहे हैं। नि:संदेह 'चम्बल में सत्संग' में संकलित दोहे विचारों की विविधता एवं समसमायिक जीवन संदर्भो के भाव-चित्रों की प्रस्तुति हैं। इससे कवि के विविध विषयक ज्ञान, गम्भीरता व अभिव्यक्ति कौशल का परिचय मिलता है, जो निश्चित ही रचनाकार की दीर्घ काव्य-यात्रा का परिणाम है। मुझे विश्वास है कि इस कृति का साहित्य जगत् में भरपूर स्वागत होगा।

❑❑❑

'जफर मंजिल' 11/116, ग्वालटोली.
कानपुर-208001.
मोबाइल : 09450938629

पुस्तक-आलोचना

हंसा आएगी ज़रूर

समीक्षक : डॉ. सीमा शर्मा
लेखक : एम. जोशी हिमानी
प्रकाशक : रश्मि प्रकाशन

वर्तमान समय ऐसा है जहाँ स्त्रियाँ एक ओर तो नित-नए-प्रतिमान गढ़ रही हैं। शीर्ष पर पहुँचकर अपनी सशक्त पहचान बना रही हैं। हर एक दुर्गम कहे जाने वाले क्षेत्र में अपनी सामर्थ्य भी सिद्ध कर रही है और ऐसा वे किसी बैसाखी के सहारे नहीं वरन् अपने दम पर कर रही हैं। इन सशक्त महिलाओं की उपलब्धियाँ सभी को आकर्षित भी करती हैं किन्तु इन महिलाओं की संख्या मात्र इतनी हैं जिन्हें उँगलियों पर गिना जा सकता है; जबकि स्त्रियों का बहुत बड़ा वर्ग ऐसा है, जो आज भी मूलभूत अधिकारों और सुविधाओं से वंचित और शोषित है। एम. जोशी हिमानी का उपन्यास 'हंसा आएगी ज़रूर' इसी वंचित और शोषित वर्ग की कथा कहता है। उपन्यास की कहानी उत्तराखण्ड के सुदूर ग्रामीण अंचल से आरम्भ होकर लखनऊ होते हुए पंजाब तक जाती है किन्तु स्थान परिवर्तन के साथ 'हंसा' के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता। वह तो पितृसत्तात्मक समाज के शोषण और दमन के चक्रव्यूह में ऐसा फँसती है कि कभी बाहर नहीं निकल पाती।

उपन्यास की 'नैरेटर' हेमा में और एम. जोशी हिमानी में बहुत साम्य दिखाई देता है। वैसे भी किसी रचना में लेखक के निजी अनुभवों की बहुत बड़ी भूमिका होती है। इस संबंध में सुप्रसिद्ध कथाकार ममता कालिया का कहना है कि लेखक अपने जीवन का तीन-चौथाई तो अपनी रचनाओं में ही उड़ेल देता है। इस प्रकार लेखिका के वास्तविक अनुभव, प्रस्तुत रचना को विश्वसनीय बनाने का कार्य करते हैं। लेखिका क्योंकि स्वयं उत्तराखंड के सुदूर पहाड़ी क्षेत्र से हैं तो वे वहाँ के परिवेश, रीत-रिवाज, परम्परा, जीवन-शैली और रूढ़ियों से भी भली-भाँति परिचित हैं, तभी तो वे वहाँ के प्राकृतिक सौंदर्य के साथ-साथ वहाँ की कठिनाइयों और स्त्रियों के दुर्गम जीवन का इतना सजीव चित्रण कर पाती हैं। वे लिखती हैं- ''औरतों की जवानी खेतों में हाड़तोड़ मेहनत कर थोड़ा-सा अनाज पैदा कर पाने, ऊँचे-ऊँचे पेड़ों पर चढ़कर जानवरों के लिए पत्तों का चारा इकट्ठा करने, जलावन की लकड़ियों की ढेरी लगाने में जाया हो जाती है।'' ये ऐसा वर्ग है जो अपनी छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपना पूरा जीवन होम कर देता है वहीं एक अभिजात्य वर्ग भी है जिसे केवल घर के कार्यों के लिए भी गृह सहायक की आवश्यकता होती है। घरेलू कार्यों के लिए महिलाएँ और लड़कियाँ सबसे उपयुक्त होती हैं; क्योंकि साधारणतया उनसे किसी प्रकार का भय नहीं होता। हेमा की माँ 'हंसा' को इसलिए लाई थी अपने मायके से। बारह-तेरह वर्ष की हंसा किसी युवा स्त्री की तरह घर के सारे काम निपटा लेती थी; जिसके कारण माँ निश्चिंत हो गई थी। उनकी इस निश्चिन्तता ने ऐसा संकट उनके सामने ला खड़ा किया जिसकी उन्होंने कलपना भी नहीं की थी। बड़ी होती हंसा और हेमा जब मासिक धर्म के चक्र में फँसी तो माँ को अच्छा नहीं लगा। इसके पीछे दो कारण दिखाई देते हैं एक लड़कियों के बड़े होने का संकेत, दूसरा हंसा की कुछ दिनों के लिए घर के कामों से छुट्टी। यहाँ लेखिका ने उस मानसिकता पर प्रश्न चिह्न लगाया है जो स्त्री को मासिक धर्म के समय अछूत मानकर उसे हेय दृष्टि से देखते हैं और उन्हें किसी अँधेरे कोने में स्थान दे दिया जाता है। पितृसत्तात्मक सोच से प्रभावित स्त्रियाँ इस व्यवस्था को पूरे मनोयोग से बनाए रखने का प्रयत्न करती हैं। ऐसे में जब घर की स्त्रियाँ किसी अँधेरे कोने में रहने को विवश हैं तो गृह-सेविका की दशा को तो समझा ही जा सकता है। यही कारण है कि हंसा को उन पाँच दिनों के लिए जानवरों के साथ (गायों के रहने का स्थान) गोष्ठ में स्थान मिलता है।

हंसा के जीवन के ये कठोर पाँच दिन उसके सम्पूर्ण जीवन को अंधकारमय बना देते हैं; जब किशोरी हंसा गर्भवती हो जाती है। यहाँ एक तथ्य है जो विश्वसनीय नहीं बन पाता। हंसा के पेट में हेमा के पिता का बच्चा है और यहाँ संकेत किया गया है कि मासिक धर्म के समय जब हंसा गोष्ठ में सोती थी तो 'पिता को रात के समय धीरे से गोष्ठ का दरवाज़ा खोलते बंद करते महसूस किया था।' यदि ऐसा था तो समान्यतया माना जाता है कि मासिक चक्र के समय गर्भाधान की संभावना नगण्य होती है। ऐसे में कहा जा सकता है कि उस किशोरी का शोषण अन्य दिनों में भी किया जाता रहा होगा। उस पुरुष में अपने कुकृत्य को लेकर तो कोई पछतावा नहीं है किन्तु 'लोक' का भय अवश्य है। तभी तो वह अपनी पत्नी से कहता है ''देवी, मुझे माफ कर दो। मेरी लाज अब तुम्हारे हाथ में है। तुमने आग को ही घर में रख लिया था, मैं जलने से खुद को बचा न पाया।'' ये शब्द एक ऐसे के पात्र हैं जो स्वयं पंडित है और पूरे समाज में आदर्श और पूजनीय माना जाता है। जब ऐसे लोग ही विवेक शून्य हो जाएँ तो किसी और को क्या सीख देंगे। अपनी ही पुत्री की आयु की एक किशोरी उसके लिए भोग्या बन जाए; कितनी भयावह स्थिति है। यह कहानी यहीं समाप्त नहीं होती, हंसा के लिए तो यह उसके शोषण का प्रस्थान बिन्दु मात्र है। पितृसत्तात्मक सोच केवल पुरुषों की ही नहीं महिलाओं की भी होती है क्योंकि वे भी तो इसी व्यवस्था का अंग है और आश्रित हैं पुरुष पर। हेमा की माँ का क्रोध, पीताम्बरदत्त के मात्र एक वक्तव्य 'अपने प्राण त्यागने के अलावा कोई चारा नहीं.....। शायद मेरे लिए विधि का यही विधान है, से जैसे गायब हो जाता है। पीताम्बर का यह वाक्य

चेतावनी का कार्य करता है यदि वह न रहा तो, वह दाने-दाने को मोहताज हो जाएगी। यहाँ नैतिक-अनैतिक से अधिक उपयोगिता का प्रश्न है। एक तो पुरुष, दूसरा पोषक भी; तो उसे पापी या अपराधी कैसे माना जा सकता है? इसलिए शोषक को अपराधी न मानकर शोषित को अपराधी मान लिया जाता है और शरण ली जाती है भूती आमा की- ''हो न हो यह सब करा-धरा मेरे मायके की भूती आमा का है। .....भूती आमा ने ही मेरा घर बरबाद करने के लिए इस डंकिनी को मेरे साथ भेजा था शायद।'' प्रस्तुत उपन्यास में भूती आमा की मार्मिक कथा, छोटी-सी सहायक कथा के रूप में आती है। इस कथा में लेखिका ने भगीरथी के माध्यम से उन स्त्रियों की दुर्दशा का चित्रण किया है, जिनका संतान उत्पन्न करने के, एक यंत्र के रूप में उपयोग किया जाता है। उसकी मानसिक और शारीरिक दशा की परवाह किए बिना; उनके साथ यह सब किया जाता हैं यदि भागीरथी इतनी कम आयु की न होती तो, उसे इस भयानक अंत का सामना नहीं करना पड़ता। परम्परा के नाम पर सड़ी-गली रूढ़ियाँ स्त्री दुर्दशा की वाहक बनती हैं।

कथा के आगे बढ़ने पर हेमा की माँ का एक अलग ही रूप सामने आता है। वह 'हंसा' के साथ हुए शोषण को छुपाने के लिए और अपने पति पीताम्बर दत्त के बचाव के लिए एक कहानी गढ़ती है और उसमें निर्देशन से लेकर मुख्य पात्र की भूमिका तक निर्वहन स्वयं करती है। यहाँ एक सत्य को छुपाने के लिए सौ नहीं, हज़ारों झूठ बोले जाते हैं। सब अपना-अपना अभिनय करते हैं किन्तु 'हंसा' मूक ही बनी रहती है। वह तड़पती है लेकिन प्रतिशोध नहीं करती। यही कारण है कि 'हेमा' के मन पर इस घटनाक्रम का ऐसा प्रभाव पड़ता है जिससे वह कभी बाहर नहीं निकल पाती। किशोरावस्था से लेकर युवावस्था तक के अनुभव उसे एक खण्डित व्यक्तित्व में बदल देते हैं। वह 'हंसा' की दशा के कारण व्यथित हो जाती है और उसका बदला लेना चाहती है। अपने माँ व पिता के कृत्यों के कारण वह बहुत कठोर बन जाती है और विद्रोह की सीमा तक जाती हैं और वह विवाह न करने का भी निर्णय लेती है। माँ

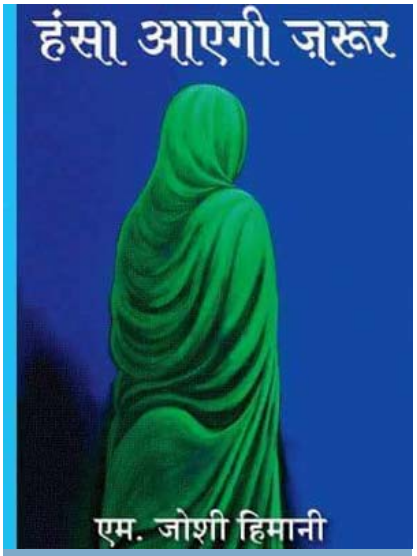

पुस्तक- हंसा आएगी ज़रूर, लेखक- एम. जोशी हिमानी, प्रकाशक- रश्मि प्रकाशन, लखनऊ, मूल्य - 100 रुपये

के द्वारा विवाह की बात कहे जाने पर वह अपना विरोध प्रकट करती है- ''माँ हंसा को वापस लाकर पहले उसका कनयादान करो तो, मैं दूसरे दिन ही तुम लोगों से अपना कन्यादान करा लूँगी।''

यहाँ एक प्रश्न यह भी उठता है कि 'हंसा' के साथ इतना कुछ घटित होता है लेकन उसका परिवार कहीं नहीं है। उसे एक बार घर से भेजकर, क्या उसका परिवार इतना निश्चिंत हो गया कि कभी उसकी सुध लेने की भी नहीं सोची। जबकि वह कहीं बहुत दूर से नहीं आई थी; तो क्या वह बोझ थी जिसे उतारकर उसके परिजनों ने मुक्ति पा ली थी और उसके जीने मरने से किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता था। बाल मज़दूरों के साथ, चाहे लड़की हो या लड़का; कितनी ही अप्रिय, भयानक और वीभत्स घटनाएँ पढ़ने-सुनने को मिलती हैं और घरों में काम करने वाली स्त्रियों के साथ भी बहुत बड़ी संख्या में गंभीर समस्याएँ सामने आती हैं। इस उपन्यास में हंसा मूक रहकर भी, अपनी जैसी स्थितियों में जीने वाले वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। ये ऐसा वर्ग है जहाँ भी रहे शोषण-अन्याय से बचने के बहुत कम ही अवसर इनके पास होते हैं। अनामिका जी का कहना- ''स्त्री की देह उसके शोषण प्राइम साइट है।'' बहुत सही है। हंसा भी जैसे मात्र एक 'देह' बनकर रह जाती है; चाहे पीताम्बर दत्त हो, सरदार हो या वे बलात्कारी, हंसा तो सभी के लिए मात्र एक 'देह' है। पूरे कथानक में हंसा की परिणति एक वस्तु या भोग्या के रूप में दिखाई देती है।

हेमा ने क्योंकि हंसा के जीवन की कठिनाइयों को देखा-समझा और महसूस किया, इसलिए वह इस समस्त घटनाक्रम से स्वयं को अलग नहीं रख पाती।

'हंसा कब आएगी' उपन्यास के शीर्षक में एक प्रश्न है और उपन्यास कई प्रश्न पाठकों के समक्ष छोड़ता हुआ समाप्त हो जाता है। यहाँ लेखिका ने कोई समाधान प्रस्तुत नहीं किया है किन्तु कई सम्भावनाओं को अवश्य जन्म दिया है। लेखिका ने समस्याओं को यथारूप पाठकों के समक्ष रख उसी के विवेक पर छोड़ दिया है कि वह जैसे चाहे वैसे देखे और समाधान सोचे। क्योंकि उपन्यास के अंत में कोई समाधान नहीं है तो उपन्यास समाप्त होकर भी समाप्त नहीं होता और पाठक के मस्तिष्क में आगे भी गढ़ा जाता है, यह उपन्यास की सफलता भी है।

उपन्यास आकार में लघु किन्तु कथ्य में बहुत बड़ा है। कथा कहने का सरल और सुरुचिपूर्ण ढंग, कथावस्तु को कहीं बोझिल नहीं होने देता और पाठक की रुचि को निरंतर बनाए रखने में सफल होता है यही कारण है कि उपन्यास को एक बार पढ़ना शुरू किया तो बीच में छोड़ना लगभग असंभव है। भाषा सरल और पात्रानुकूल है क्योंकि कहानी उत्तराखंड के ग्रामीण क्षेत्र में शुरू होती है तो वहाँ की भाषा के कुछ शब्दों का प्रयोग रचना को आकर्षक बनाने का कार्य करता है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमंते देवता' कहने वाले देश में 'हंसा आएगी ज़रूर' दर्पण दिखाने का कार्य करता है, जहाँ हर रोज छोटी-छोटी शिशुओं के साथ अमानवीय घटनाएँ देखने को मिलती हैं वहाँ हंसा जैसी लड़की के साथ ऐसा व्यवहार बहुत आश्चर्यजनक नहीं है। उपन्यास में समाधान न प्रस्तुत किया जाना भी इसकी सामर्थ्य ही जान पड़ती है। यदि यह रचना कुछ लोगों को सचेत और जागरूक बना सके तो सफल है।

❑❑❑

एल-235, शास्त्रीनगर, मेरठ (उ.प्र.)
ईमेल : sseema561@gmail.com
मोबाइल : 9457034271

समीक्षा

ज़िन्दगी का क्या किया

समीक्षक : चित्रा देसाई
लेखक : धीरेन्द्र कालिया
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन

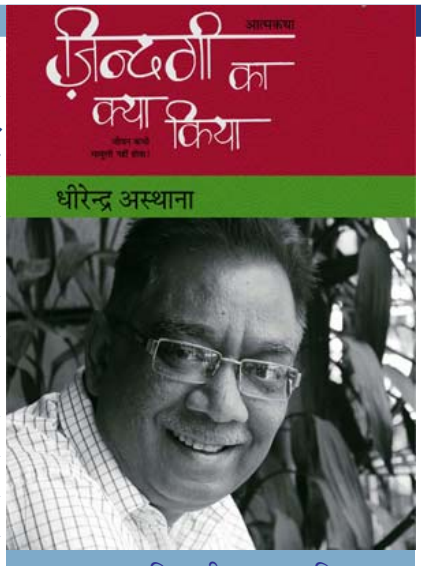

पुस्तक- ज़िन्दगी का क्या किया (आत्मकथा), लेखक- धीरेन्द्र अस्थाना प्रकाशक- राजकमल प्रकाशन

निज को सार्वजनिक करना आसान नहीं होता। आत्म कथा लिखने के लिए स्मृतियों का पिटारा खोल कर बैठना पड़ता है। क्या बताएँ और क्या न बताएँ का द्वंद्व ! जब आप ज़िन्दगी का हिसाब- किताब लिखने बैठते हैं तो आप उन रिश्तों के बारे में भी लिखते हैं जो आपको सींचते हैं और उनके बारे में भी जो आपको बींधते हैं। इसीलिए लगता है कि किसी की भी आत्म कथा पर प्रतिक्रिया आसान नहीं। ये धीरेन्द्र जी का जिया हुआ सच है। ये किताब एक बार में ही पढ़ ली क्यों कि इसकी शब्दावली बहुत सहज,सरल और बाँधने वाली है। धीरेन्द्र जी की भाषा एक लय की तरह बहती है और कहीं भी बोझिल नहीं।

कोई भी आत्म कथा व्यक्तिगत होने के साथ- साथ अपने समाज और काल को भी बयान करती है। इसमें बहुत से नामी लेखकों की बातें हैं। कई शहरों की परिक्रमा कराती है। ये आत्म कथा एक प्रश्न से शुरू होती है 'मैंने क्या किया?' पहले पन्ने पर उनकी रचनाओं की जन्म भूमि की बात होती है। वह ज़मीन जो बुरी, बदहाल, अक्षम, असुरक्षित और बेहद मजबूर यानि नरक है। ईमानदार बयान भी तो जोखिम से गुज़रना है ! दरअसल किताब पढ़ते हुए ये लगा कि आप मेरठ से मुम्बई की ट्रेन में बैठ गये हैं और वहाँ से हर दृश्य देखते जा रहे हैं। मेरठ-बस जन्म देने वाला शहर। वहाँ कुछ विशेष नहीं घटता। दूसरा पड़ाव आगरा। एक अनजान लड़की की गोद, फुटपाथिया साहित्य प्रेम, फ़िल्मी गानों का शौक यहीं पनपा। यहीं पढ़ने की लत लगी और पुस्तकों का बिरवा फूटा। पिता द्वारा पहली पिटाई का शहर फिर मुज़फ्फरनगर। अजीब गंदा शहर। फ़िल्मी और बचकानी कहानियों वाला शहर। आत्म हत्या करने की कोशिश में अपाहिज हुई माँ, जो स्थाई रूप से बीमार रहती थी। इस शहर में गुज़रे साल दु:स्वपन जैसे बीते। फिर देहरादून। पहले प्रतिवाद का शहर। सिगरेट शराब का शहर। एस एफ आई अध्यक्ष का शहर। यहीं 75 रुपये की प्रुफरीड़िंग की नौकरी। यहीं पर लेखन शुरू। पहली कहानी 'लोग हाशिए पर' पर छपते ही साहित्यकार की श्रेणी में आ गए। 'सारिका' में कहानी छपी 'आयाम'। जिसे पढ़कर ललिता बिष्ट का पत्र व्यवहार शुरू और एक दिन ललिता सब छोड़ कर देहरादून आ जाती हैं और 3 जून 1978 में दोनों का विवाह। यानि पढाई, राजनीति, लेखन, नौकरी और प्रेम-सब इसी शहर की देन।

फिर आता है दिल्ली शहर। राजकमल प्रकाशन में नौकरी। फिर राधाकृष्ण में। उसके बाद दिनमान, चौथी दुनिया। दिल्ली की बातें। यहाँ मजनू का टीला है और 1984 के दंगे भी हैं। यहाँ लेखकों से जुड़ी बहुत सी रोचक बातें भी हैं। एक किस्सा ब्रजेश्वर मदान से जुड़ा है। वे दिनमान में थे। साथ ही एक फ़िल्मी पत्रिका का संपादन करते थे। दिनमान से निकलते हुए कई बार धीरेन्द्र जी के कान में कहते कि बस हेमा मालिनी से मिल कर आते हैं। ऐसे ही बाकी लोकप्रिय फ़िल्मी कलाकारों का नाम भी लेते। धीरेन्द्र जी उनसे ईर्ष्या करते कि वह कितने फ़िल्मी सितारों से मिलते हैं ! बाद में पता चलता है कि दरअसल उनके सब साक्षात्कार काल्पनिक थे। वह किसी से नहीं मिलते थे ! ये पत्रकारिता पर भी एक प्रश्न चिह्न लगाता है। दिल्ली में ही धीरेन्द्र जी का पहला घर बना सादतपुर में। वहाँ बाबा नागार्जुन के सानिंध्य में रहे। उनका फकीरीपन वहाँ भी है। किसी के घर चाय, कहीं पकौड़ी और कहीं खाना ! लिखा है कि सादतपुर में ही नहीं पर देश के बहुत से साहित्यकारों के घर उनके कुर्ते- पाजामे तह किए रखे रहते थे। काश बाबा नागार्जुन पर धीरेन्द्र जी ने एक पूरा अध्याय लिखा होता !

एक प्रसंग जिसने बहुत चौंकाया वह भगवान् रजनीश को लेकर है। मनाली में धीरेन्द्र जी उनसे साक्षात्कार लेने पहुँचे। प्रश्नावली अग्रिम माँगी गई और बताया गया कि वे सवाल अंग्रेज़ी में ही करें क्योंकि भगवान् हिन्दी में बात नहीं करेंगे ! ये पढ़ कर झटका लगता है कि भारत का दार्शनिक भारत की धरती पर हिन्दी की पत्रिका को हिन्दी में इंटरव्यू देने से मना करता है ! ये हिन्दी के प्रति उनकी मानसिकता को दिखाता है। किताब में बहुत से रोचक किस्से हैं।

यहाँ श्रीकांत वर्मा का भी ज़िक्र है जो बड़े कवि होने के साथ कांग्रेस पार्टी के प्रवक्ता भी थे। दिल्ली के साहित्यिक और राजनीतिक गलियारों की झलक भी है। श्रीकांत वर्मा ने धीरेन्द्र जी को बतौर पत्रकार मास्को घूमने का निमंत्रण भी दिया जो इन्होंने ये सोच कर ठुकरा दिया 'कि उन दिनों साहित्यकारों का गैर-वामपंथी राजनीतिक पार्टियों से जुड़ना अच्छा नहीं माना जाता था'। कुछ विचारधारा कभी नहीं बदलती ! यहाँ लेखकों के किस्सों की भरमार है। एक प्रसंग का उल्लेख है कि जब धीरेन्द्र जी फिर से दिल्ली जाते हैं तो मृणाल पांडेय को फ़ोन पर सूचित करते हैं कि 'दीदी, मैं

धीरेन्द्र अस्थाना बोल रहा हूँ और दिल्ली आया हूँ', उनका जवाब 'तो....' का उपेक्षा भाव धीरेन्द्र जी को ही नहीं बल्कि हर पाठक को भीतर तक उदास कर देता है।

दरअसल पूरी किताब पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि आप लेखकों की बैठक में हैं। उनके साथ कॉफी पीते हुए उनकी बातें सुन रहें हैं। अपने साथ हुई घटनाओं को केन्द्र में रखकर उन्होंने बहुत सी कहानियाँ लिखी। संस्मरण लिख कर कोपभाजन भी बने। दो भाव किताब में लगातार बने रहते हैं, वे हैं - आर्थिक अभाव और अकेलापन। रेलवे स्टेशन पर कोई नहीं आता। ऑपरेशन के समय भी नहीं! सब तभी तक साथ रहते हैं जब तक आप कुछ देने की स्थिति में रहते हैं! बहुत सी प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के साथ जुड़ने पर भी आर्थिक अभाव निरन्तर रहता है। हिन्दी लेखकों के लिए ये श्राप क्यों? धीरेन्द्र जी के शब्दों में 'दिनमान में रहते हुए 7अगस्त 1981से नवम्बर 1986 तक मैंने बेहद रंगारंग लेकिन अभाव ग्रस्त जीवन जिया। उन दिनों घर का खर्च चलाने के लिए कम से कम 15 रातें विभिन्न प्रकाशकों की पुस्तकों के प्रूफ पढ़ने में खर्च होती थी। ये 15 रातें हमारी ज़रूरतों का काफी सामान जुटाती थीं'। ये हिन्दी की स्थिति पर भी टिप्पणी है।

किताब का समापन भी इसी प्रश्न से होता है 'लेकिन ठीक यही वह जगह है जहाँ खड़े होकर यह सवाल उठाया जा सकता है कि यह समाज हिन्दी लेखकों को इतना पैसा क्यों नहीं देता कि वह खिलाड़ी, अभिनेता, मॉडल, संगीतकार, चित्रकार या निर्देशक की तरह जीवन यापन की वैकल्पिक व्यवस्था कर सके? प्रकाशक पुस्तक छापता है, खिलाड़ी खेलता है। एक्टर एक्टिंग करता है। गायक गाता है। संगीतकार संगीत बनाता है। डांसर नाचता है। अकेला हिन्दी का लेखक है जो लिखता बाद में है पहले नौकरी करता है।

अब 'ज़िन्दगी का क्या किया-भाग-2' की प्रतीक्षा।

❑❑❑

3 ए-302 ऑकलैंड पार्क, यमुना नगर,
लोखंडवाला कॉम्प्लैक्स, अंधेरी पश्चिम,
मुम्बई 400053
मोबाइल 9820059147

पुस्तक चर्चा

तेरी हँसी -कृष्ण विवर सी

समीक्षक : नितिन कलाल
कवयित्री: पूनम सिन्हा 'श्रेयसी'
प्रकाशक: शिवना प्रकाशन

पिछले दिनों पूनम सिन्हा 'श्रेयसी' द्वारा रचित काव्य-संग्रह ''तेरी हँसी कृष्ण विवर सी'' पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वर्ष 2018 के प्रारम्भ में दिल्ली के प्रगति मैदान में 6-14 जनवरी के मध्य ''विश्व पुस्तक मेला'' का आयोजन और शिवना प्रकाशन के माध्यम से कविता संग्रह- ''तेरी हँसी -कृष्ण विवर सी'' के प्रथम संस्करण का विमोचन किया गया। पूनम जी की रचनाओं को मैं पिछले एक वर्ष से भी अधिक समय से ''काव्यकोश'' पर ऑनलाइन पढ़ता आ रहा हूँ, और भाषा और शब्द चयन पर नियंत्रण इनकी रचनाओं की विशेषता है। तेरी हँसी कृष्ण विवर सी में उनकी 51 कविताएँ संकलित की गई हैं।

''तेरी हँसी कृष्ण विवर सी'' एक पुस्तक के रूप में उनका प्रथम प्रकाशित काव्य-संग्रह है।

''तुम्हारी तरह हम भी पले थे,
नौ माह माँ के गर्भ में
फिर क्यों रहे सभी अधिकारों से वंचित,
सोचना ज़रा हमारे बारे में।''

समाज के ''किन्नर-वर्ग'' की पीड़ा को व्यक्त करती यह रचना, समस्त रचनाओं में एक विशेष स्थान रखती है, क्योकि यह रचना कवयित्री की सोच को व्यक्त करती है। लेखन माँ शारदा की उपासना है, यह किसी जाती अथवा वर्ग विशेष की अमानत नही, लेखिका की यह रचना इस तर्क पर सटीक सिद्ध होती है।

भारतीय सेना के परिवारों के अनकहे दर्द को व्यक्त करती कविता ''शहीद'' हमें उस पीड़ा से जोड़ती है।

उसके अतिरिक्त और कई कविताएँ है जिनका शीर्षक घरेलू उपयोग की वस्तुओं पर आधारित है, जैसे झाड़ू, कंघी, कैंची, सुई। यह रचनाएँ भी कवयित्री की गहरी सोच को व्यक्त करती है। जिन वस्तुओं को हम सामान्य दृष्टिकोण से देखते है, कवयित्री ने उनका खूबसूरती से अपने शब्दों द्वारा चित्रण किया है।

''सीपियों में नाग छुपे
मुक्ता को पहचाने कौन
चकाचौंध की दुनिया में
अपनों को सब भूल रहे
अब क्या होगा?''

आधुनिकता के दौर में विलुप्त हो रहे मानवीयता के मूल्यों पर तंज़ कसती यह एक बेहतरीन रचना है। कवयित्री का यह 51 कविताओं का एक बेहतरीन संग्रह है, जो निश्चित ही समाज के विविध पहलुओं को छूती है। बेमिसाल रचनाओं की यह संग्रह यात्रा, यहीं समाप्त नहीं होती! अपितु एक नया संसार रचते हुए पाठकों को नई दुनिया में लिए चलती है, इक नई सोच और ऊर्जा प्रदान करती है। कवयित्री को अपने प्रथम काव्य-संग्रह के प्रकाशन की शुभकामनाओं सहित मंगल कामनाएँ एक कवयित्री और लेखिका के रूप में सफल भविष्य की।

❑❑❑

nitinkalal.blogspot.com

स्वप्नदर्शी

समीक्षक : जवाहर चौधरी
लेखक : अश्विनी कुमार दुबे
प्रकाशक : इंदिरा प्रकाशन

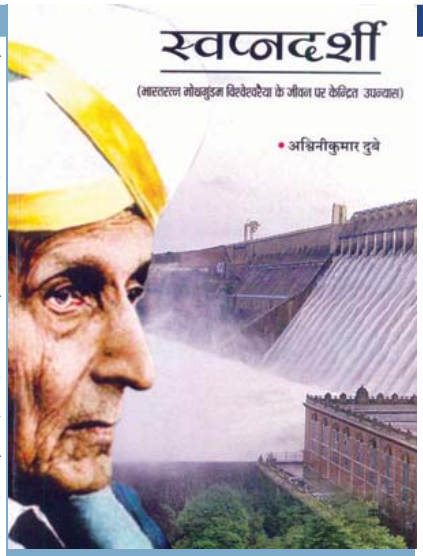

उपन्यास स्वप्नदर्शी, रचनाकार – अश्विनीकुमार दुबे, प्रकाशक – इंदिरा पब्लिकेशन हॉउस, मूल्य 250 रुपये

किसी व्यक्ति के जीवन पर शोधपरक लिखना श्रमसाध्य और कठिन काम है। खासकर तब जब कोई रचनात्मक लेखन में संलग्न रहा हो और उसकी पहचान भी इसी वजह से हो। जीवनी लेखक को तथ्यों में हस्तक्षेप की छूट कतई नहीं होती है। लेकिन तथ्य जीवनी का सबसे ज़रूरी पक्ष है, लेखक की स्वाभाविक चिंता भी होती है कि कहीं विषय बोझिल ना हो जाए। काल्पनिकता की गुंजाइश जहाँ सीमित हो और बहुत कुछ भाषा पर टिक जाता हो तो दिक़्क़त होती है। पाठक को बाँधे रखने के लिए रोचकता एक बड़ी ज़िम्मेदारी है, बल्कि यह कहना ठीक होगा कि चुनौती है जिसे अश्विनीकुमार दुबे बड़ी कुशलता से निर्वाह कर गए दीखते हैं। वे एक सधे हुए रचनाकार हैं। उनकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हैं, जिसमें व्यंग्य संग्रह, कहानी संग्रह और उपन्यास आदि हैं। सो लेखन के समृद्ध अनुभव ने यहाँ उनकी बहुत मदद की है। परिणाम स्वरूप भारतरत्न मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया के जीवन पर केन्द्रित बहुत रोचक और प्रेरणादायी उपन्यास ''स्वप्नदर्शी'' हमारे सामने है।

पुस्तक चर्चा में उसके मूल कथ्य की बात भी होना चाहिए। मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया एक प्रतिभाशाली इंजीनियर थे, जिन्होंने अंग्रेज़ों के ज़माने में, अंग्रेज़ी इंजीनियरों के सामने अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की। उनकी लगन, निष्ठा और आत्मविश्वास आज के समय में भी अनुकरणीय है। दुबे जी ने बहुत सहजता से मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया की कहानी शुरू की। उनका गाँव, बचपन, स्कूल और इस दौरान की कुछ घटनाएँ जो मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया के परिवार को विचलित भी करती हैं। लेकिन मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया को भाग्य को दोष देना पसंद नहीं था। वे कर्म पर विश्वास करते थे। आर्थिक तंगी के बीच उन्होंने मामा के घर रह कर पढ़ाई की। इस तरह 1860 में आन्ध्र प्रदेश के एक छोटे से गाँव में जन्मे मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया की जीवन यात्रा संघर्ष पूर्ण और अविश्वसनीय सी प्रतीत होती है। उनका जीवन किसी कथा-कहानी सा लगता है। शायद इसलिए जब अश्विनी कुमार दुबे इस जीवनी को उपन्यास कहते हुए प्रस्तुत करते हैं तो न्याय ही करते हैं। शाकाहारी मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया शतायु हुए, आरंभ में ही यह जानना अनेक पाठकों के लिए कौतुहल भरा लगता है। उनकी माता ने बचपन में उन्हें पगड़ी पहनाते हुए निर्देश दिया कि इसे सदा पहनना, ये हमारी प्रतिष्ठा और पहचान की प्रतिक है, और मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया सारा जीवन पगड़ी धारण करते रहे। अपने ज्ञान को समृद्ध करने के लिए उन्होंने विदेश यात्राएँ भी की। एक बार स्वीडन की ठंडी जलवायु उनके लिए जानलेवा बन गई। डाक्टरों ने उन्हें जान बचाने के लिए ब्रांडी लेने की ज़रूरत बताई। लेकिन उन्होंने साफ मना कर दिया। बाद में वे ठीक हुए और आगे बढ़े। यह चारित्रिक दृढ़ता चौंकाती है। उनका मुख्य कार्य क्षेत्र नदियों- नहरों पर बाँध बाँधने को लेकर था। सौ-सवा सौ साल पहले तकनीकी विकास सिमित था, साधन भी बहुत कम थे, लेकिन ज़रूरतें और चुनौतियाँ अधिक थीं। उपन्यास बताता हैं कि कई बार तो अंग्रेज़ इंजीनियर किसी काम को असंभव मान लेते थे। किन्तु जब मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया को काम सौंपा जाता तो वे अपनी युक्तियों, आत्मविश्वास और स्थानीय जन सहयोग से उसे संभव कर दिखाते थे। उनके सहयोग और निर्देशन में अनेक औद्योगिक-सामाजिक योजनाएँ अस्तित्व में आई, जिनमें प्रमुख हैं- मैसूर आयरन एंड स्टील वर्क्स, कावेरी नदी पर महत्त्वपूर्ण बाँध, मैसूर में सिंचाई और बिजली उत्पादन के अनेक प्रोजेक्ट, 'स्वाभिमानी ग्राम योजना', छोटा परिवार रखने यानि जनसँख्या नियंत्रण का विचार, शिक्षा प्रसार, राज्य में पशुपालन को लेकर उन्होंने एक नई दृष्टि पैदा की। परम्परागत खेती के आलावा फलों और फूलों की खेती, रेशम उद्योग आदि अनेक ऐसे गैर तकनीकी क्षेत्रों में भी उनकी सक्रियता दिखाई देती है। वे केवल इंजिनियर नहीं थे, सामाजिक पुनर्निर्माण में भी उनकी महती भागीदारी थी। सच तो यह है कि मोक्षगुन्डम विश्वेश्वरैया ने अपनी भूमिका के लिए कोई सीमा तय नहीं की थी। जहाँ भी उन्हें लगता था कि यहाँ सुधार या बदलाव की ज़रूरत है, वे अपने को झोंक देते थे, बिना यह सोचे कि वे इंजीनियर हैं, समाजसेवी नहीं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह पुस्तक लम्बे समय तक समाज को प्रेरित करती रहेगी।

❐❐❐

16, कौशल्या पुरी, चितावद रोड, इंदौर, मध्यप्रदेश 452001
मोबाइल : 9826361533

समीक्षा

तपते जेठ में गुलमोहर जैसा

समीक्षक : सुषमा मुनीन्द्र
लेखक : सपना सिंह
प्रकाशक : ज्योतिपर्व प्रकाशन

बरसों पहले सपना सिंह की खूबसूरत कहानी 'उम्र जितना लम्बा प्यार' पढ़ते हुए आकलन बना था सपना यदि अपने भीतर की लेखकीय क्षमता को विकसित करें तो सम्भावनाओं तक पहुँच सकती हैं। सम्भावनाओं को फलीभूत करता उनका यह पहला उपन्यास 'तपते जेठ में गुलमोहर जैसा' सिद्ध कर रहा है उन्हें अपनी लेखकीय क्षमता का ज्ञान और भान है।

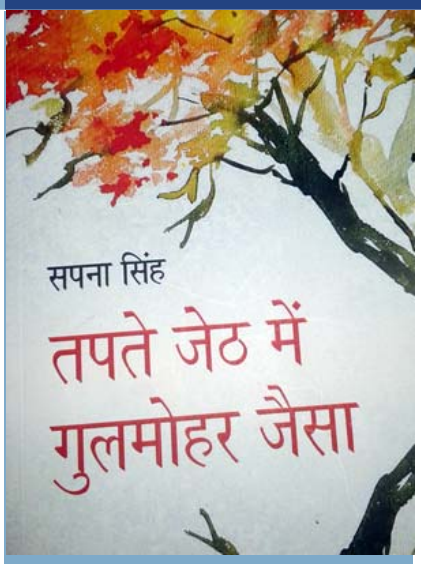

उपन्यास तपते जेठ में गुलामोहर जैसा, रचनाकार - सपना सिंह, प्रकाशक - ज्योतिपर्व प्रकाशन, मूल्य 199 रुपये

'सूरज ने कहा, मैं जहाँ हूँ... धरती से बहुत दूर वहाँ से मैंने प्यार करना सीखा है। मुझे मालूम है मैं धरती के ज़रा और पास आ गया तो सब कुछ मर जायेगा।... हम एक-दूसरे के बारे में सोचते हैं। एक-दूसरे को चाहते हैं। मैं धरती को जीवन और ऊष्मा देता हूँ। वह मुझे अपने अस्तित्व को बनाए रखने का कारण देती है।' पाओलो कोएलों की विश्व प्रसिद्ध कृति 'अलकेमिस्ट' की इन अत्यधिक उपयुक्त पंक्तियों का चयन कर सपना सिंह ने उपन्यास का आरम्भ ऐसी सूझबूझ और खूबसूरती से किया है कि ये पंक्तियाँ ज़मींदार परिवार का राज्य स्तर पर शूटिंग का चैम्पियन, मेडिकल का विद्यार्थी सूविज्ञ, जो बाद में ख्यात सर्जन के तौर पर स्थापित होता है और सामान्य मध्यवर्गीय परिवार की नाज़ुक उम्र पर खड़ी कस्बाई युवती अपराजिता के आपसी निश्छल-निर्दोष संबंध का यथार्थ बन गई है। यह प्रेम अपराजिता का प्रयास या कामना नहीं वरन नाज़ुक उम्र की कोमल प्रक्रिया थी। वह स्वयं नहीं जानती थी इस प्रेम में इतनी ताकत और प्रभाव होगा कि तरगें सुविज्ञ के मर्म तक पहुँच कर उसके प्रेम का बोध सुविज्ञ को इस सहजता से करा देगी कि प्रेम दोनों के लिए उत्साह, ऊर्जा, उत्सव बन जाएगा। हम आज यांत्रिक दौर में हैं। व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, मनोवैज्ञानिक, तार्किक स्थितियाँ इतनी भिन्न हो गई हैं कि प्रेम गिव एण्ड टेक, लॉस एण्ड प्रॉफिट जैसी हिस्सेदारी को केन्द्र में रख कर किया जाने लगा है। नि:स्वार्थ प्रेम निरी भावुकता अथवा निरर्थकता की श्रेणी में रखा जाने लगा है।

इस उपन्यास को पढ़कर अनुमान लगाया जा सकता है ढाई आखर के छोटे से शब्द प्रेम का बोध इतना व्यापक, ऊँचा, गहरा... असीम है कि प्रेम व्याख्या समग्रता में नहीं हो सकती। प्रेम को परिभाषित करने के लिये उपयुक्त भाव ही नहीं मिलते। दरअसल प्रेम के बोध को भाषा-परिभाषा, व्यख्या-टीका की सीमा में नहीं समेटा जा सकता। इसीलिये प्रेम की आधारभूमि पर इतने उपन्यास, कहानियाँ लिखी गईं, अनवरत लिखी जा रही हैं, जो स्वाभाविक तौर पर पाठकों की पहली पसंद बनी हुई हैं। प्रेम पर पढ़ते हुए पाठक उम्र के ऊपर के उस पड़ाव पर जा ठहरते हैं जब दिमाग आसमान पर होता है, पैर ज़मीन पर नहीं, भुलाए नहीं भूलता। यही अपराजिता के साथ हुआ। सपना सिंह ने अपराजिता का चरित्र चित्रण कौशल से किया है। उसका चरित्र जितना सरल उतना संश्लिष्ट है। उसका प्रेम सम्मोहक उम्र के सम्मोहन या पागलपन जैसे भाव वाला सामान्य किस्म का आरम्भ था लेकिन ऊँचाई लेकर प्रार्थना या आस्था का स्वरूप ग्रहण कर लेता है। दोनों का प्रेम अद्भुत है। एक-दूसरे से कुछ पाना नहीं है, इसलिये मानसिक यातना नहीं है। कमिटमेन्ट नहीं है इसलिये नाकामियों का भय नहीं है। परस्पर निर्भरता नहीं है इसलिये स्वार्थ नहीं है। प्रेम व्यवहारिक स्तर पर न होकर भावनात्मक स्तर पर है इसलिए इन्हें प्रेम से शक्ति मिलती है। दोनों में, प्रमुखत: अपराजिता ने अपने इर्द-गिर्द सुदंर आभासी संसार रच लिया है जिसमें सुविज्ञ अनुपस्थित होकर भी निरंतर उपस्थित है। वास्तविक स्थूल संसार के समानान्तर बन गए आभासी संसार के कारण अपराजिता को जीवन और जगत की पेचीदगियाँ वैसी कठिन नहीं लगतीं, जैसी हैं।

सुविज्ञ का विवाह सुरेखा, अपराजिता का अभिनव से होने पर दोनों के सत्ता के केन्द्र बदल जाते हैं। प्राथमिकताएँ नए सिरे से तय होती हैं लेकिन अपराजिता चूँकि अपने आभासी संसार से गति, ताकत, दिशा पा रही है, समाज और परिवार के सर्वविदित नियमों पर दृढ़ रहते हुये अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य को प्रेम, सुख, हक, भरोसा, पूरी जवाबदेही से देती है। यद्यपि अभिनव अपने नकारात्मक आचार-विचार-व्यवहार से दाम्पत्य को संगीन बनाए रहता है। अपराजिता को बपौती बल्कि कठपुतली समझते हुए नुक्ताचीनी कर, प्रताड़ित कर पितृसत्तात्मक सोच का पोषण करता है लेकिन अपराजिता प्रेम में है। प्रेम रचनात्मक और सकारात्मक होता है। इसलिये उसकी मनौतियाँ अभिनव और पुत्र अपूर्व की सलामती से जुड़ जाती हैं। वह संतुलन पर विश्वास करती है। जीवन को पूरी

गहराई से देखते हुए अपने व्यवहार में ऐसा अनुशासन, सजगता और स्पेस रखती है कि कतई जाहिर नहीं होने देती सुविज्ञ से भावनात्मक रूप से कितनी आबद्ध है। इस भाव को लेकर उसके अन्तस में उद्वेलन, कुंठा, पछतावा नहीं है। सुविज्ञ को लेकर यहाँ किसी किस्म की पक्षधरता भी नहीं है। तोष है। इसीलिए अपराजिता का प्रेम दीवानगी अथवा सम्मोहन नहीं है। आस्था और प्रार्थना है। इस आस्था से उसे इतना दृढ़ और ईमानदार बना दिया है कि यदि अभिनव या अपूर्व चाहें तो उनके सम्मुख अपने प्रेम को स्वीकार करने का साहस कर लेगी। यह उसका साहस ही है कि ज़रूरी लगने पर क्या खोया क्या पाया जैसे गणित में पड़ते हुए खुद को केन्द्र में रखकर अपने लिये मुनासिब फैसले कर लेती है। घटनाक्रम चरम पर उस वक्त आता है जब अपराजिता और सुविज्ञ मिडिल एज में पहुँचते हैं।

एक मौके पर संसारी मनुष्य की तरह आत्मनियंत्रण खोकर दैहिक संसर्ग में प्रवर्त हो आस्था के आयाम से नीचे उतर कर सिद्ध करते हैं, प्रेम, दैहिक आकर्षण के अभाव में अपूर्ण है। यह घटना न घटित होती तो उत्तम स्थिति होती। बहरहाल कथानक पर पूरा फोकस रखा गया है। अनावश्यक नैरेशन से पन्ने बढ़ाने का प्रलोभ नहीं किया गया है। यहाँ तक कि स्काई लैब, बाबरी मस्जिद ध्वंस जैसी सूचनाएँ, अभिनव, सुरेखा, अपूर्व जैसे महत्त्वपूर्ण पात्रों का वजूद उतना ही है जो उपन्यास को विकसित करने में सहायक हो। मोहक कहन शैली में लिखा गया उपन्यास कोमल भावनाओं का दस्तावेज़ है। यही इस उपन्यास की सार्थकता और ताकत है।

एक अच्छा और महत्त्वपूर्ण उपन्यास 'तपते जेठ में गुलमोहर जैसा' लिखने के लिए सपना सिंह को बधाई और शुभकामनाएँ।

❐❐❐

द्वारा- श्री एम. के मिश्र
जीवन बिहार अपार्टमेंट
द्वितीय तल, फ्लैट नं.
महेश्वरी स्वीट्स के पीछे
रीवा रोड, सतना (म.प्र.) 485001
मो. नं.- 07898245549

पुस्तक चर्चा

हैप्पीनेस ए न्यू मॉडल ऑफ ह्यूमन बिहेवियर

समीक्षक : मुकेश दुबे, लेखक: तरुण कुमार पिथोड़े, प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

मानवीय स्वाभाव अनेक भावों का संयुक्त परिणाम है, इनमें कुछ का संबंध ख़ुशी बन परिलक्षित होता है तो कुछ कष्ट की वज़ह बन जाते हैं जिसकी परिणिति सतत दुःख के रूप में होती है। हमेशा से एक बात मन में कौंधती है कि मनुष्य में व्यवहार में अंतर की वजह क्या है ? क्यों किसी का व्यवहार दूसरे को पीड़ा पहुँचाता है ? सामान्य परिस्थिति में हम इसको अच्छा या बुरा मान लेते हैं अपनी सोच अथवा समझ के अनुसार। यहाँ बुद्ध का उदाहरण प्रासंगिक है जहाँ मृत्यु तथा शिकार के अवसाद नें बुद्ध को शांति की तलाश में घर छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया था।

अधिकांश लोग जीवन में खुशियों को तलाशने के लिए संघर्षरत रहते हैं और कुछ लोग तो अवसाद से हारकर जीवन तक समाप्त कर लेते हैं, ख़ुशी की तलाश में निराश रहने पर। क्या इस स्थिति को टाला जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर यक़ीनन हाँ होगा परन्तु क्यों और कैसे ? सम्पूर्ण जीवन-दर्शन तथा वैश्विक धर्मों ने मानवीय वेदना के स्थान पर शांति व आनन्द की प्राप्ति पर चिंतन किया है फिर भी क्या इस प्रश्न का हल मिल सका है ? बस ऐसे ही जटिल प्रश्नों का जवाब तलाशने का प्रयास है यह पुस्तक जिसे भारतीय प्रशासनिक सेवा के युवा अधिकारी तरुण कुमार पिथोड़े ने सूक्ष्म चिंतन तथा व्यवहारिक दृष्टिकोण के समायोजन उपरांत एक नवीन प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत किया है। इस पुस्तक के माध्यम से मानवीय आचरण के उस संभावित पहलू पर प्रकाश डाला है लेखक ने, जिसे पूर्व में भी अनेक चिंतकों व मनोवैज्ञानिकों द्वारा समाधान के रूप में प्रतिपादित किया है परन्तु लेखक की दृष्टि में उन सिद्धांतों में परस्पर मतभेद आए बिना नहीं रह सके। क्यूँकि यह किताब एक सामान्य व्यक्ति को केन्द्रित कर लिखी गई है जिसके जीवन में असंख्य तकलीफें हैं, इसलिए यथासंभव प्रयास किया गया है सहज-सरल रूप में तथ्य सामने आ सकें। लेखन ने स्वयं स्वीकार किया है कि उनकी सोच रही है मानवीय व्यवहार को बिल्कुल सहजता से कुछ कारकों के समावेश से प्रतिमान बनाकर सामने लाया जाए।

स्वयं की जिज्ञासा को शांत करने के लिए आपने अनेक ग्रन्थ खँगाले किन्तु वे भी संतुष्ट नहीं कर सके सम्पूर्ण मानवीय संक्रियाओं को। विभिन्न लेखकों की मतभिन्नता के कारण किसी एक मत पर पहुँचना संभव नहीं था जिससे सम्पूर्ण मानवीय चेष्टाओं की समीक्षा की जा सके ! वही प्रश्न मथते रहे मस्तिष्क को कि जाने क्यूँ लोग ऐसा करते हैं, अनेक समाधान सामने थे किन्तु कोई भी लेखक के अंतस के प्रश्नों का उचित समाधान नहीं कर सका तब यह विचार आया कि मानवीय क्रियाओं के अतलांत सागर में डूब कर विविधताओं का हल तलाशा जाए जब तक प्रत्येक परिस्थिति में व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों को ना समझा जा सके। और वही समझ वर्णित की है इस किताब में।

जब लेखक कुछ प्रमुख सिद्धांतों यथा अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, मनोविज्ञान तथा सार्वजानिक प्रशासन की गहराई में गए तो पाया कि मानवीय आचरण इन सभी के संयुक्त प्रभाव का प्रतिबिम्ब है जिन्हें इस पुस्तक में वर्णित किया गया है जिसमें मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य प्रमुख है।

❐❐❐

107, डी डी एस्टेट कॉलोनी, सीहोर 466001
मोबाइल 9826243631

ढाक के तीन पात

समीक्षक : घनश्याम मैथिल 'अमृत'
लेखक : मलय जैन
प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन

यों तो साहित्य की सभी विधाओं में सदियों से प्रचुर मात्रा में सृजन और प्रकाशन अनवरत हो रहा है,परन्तु इस सतत् लेखन और प्रकाशन के मध्य कभी -कभार ही ऐसा लेखन, या ऐसी कोई कृति पाठकों के सम्मुख आती है, जिसे पढ़ कर, लेखक, आलोचक ही नहीं आम आदमी भी, स्वस्फूर्त हृदय से वाह-वाह कह उठे। रचना को पढ़ते ही पाठक का रोम-रोम पुलकित हो रचनाकार के प्रति हृदय सम्मान और कृतज्ञता से भर जाए। ऐसी ही कृति यानी व्यंग्य उपन्यास ''ढाक के तीन पात'' विगत दिनों प्रतिष्ठित राधाकृष्ण प्रकाशन से प्रकाशित हो कर पाठकों के मध्य आया है। इस कृति के बारे में लेखक मलय ने ''कुछ दिल से...'' शीर्षक से उपन्यास के पहले पृष्ठ पर बहुत ही संक्षिप्त में अपनी बात पाठकों के सम्मुख रखी है उसका एक अंश आपके सामने रखना मैं ज़रूरी समझता हूँ। वे लिखते हैं ''हमारे देश को विकसित देशों की श्रेणी में खड़ा करने के लिए अत्यंत परिश्रम से तैयार की गई योजनाओं को क्रियान्वित करने में जहाँ निष्ठावान् लोगों ने ईमानदार प्रयास कर विकास के फूल खिलाए हैं वहीं निष्ठा में प्रदूषण के फलस्वरूप कुछ लोगों ने सब ढाक के तीन पात करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। ऐसे लोग हर गाँव, हर शहर, हर गली-कूचों में हमारे आसपास ही हैं और हमारे लिए अबूझे नहीं हैं। उपन्यास में मेरे द्वारा सांस्कृतिक प्रदूषण और अपसंस्कृति के इस दौर में समाज में आ रहे परिवर्तनों को भी रेखांकित करने का छोटा-सा प्रयास किया गया है। शहर की चमक-दमक से दूर ठेठ देहात के लोग,उनके जीवन में उपजती समस्याएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और इंटरनेट के इस चमत्कारी युग में भी हमारी मानसिकता की चाल, वही ढाक के तीन पात उपन्यास की मूल विषय वस्तु है।''

इस उपन्यास के लोकार्पण अवसर पर आयोजित चर्चा में भाग लेते हुए ख्यात व्यंग्यकार पद्मश्री डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी जी ने जो महत्त्वपूर्ण टिप्पणी की थी वह भी यहाँ रेखांकित करने योग्य है उन्होंने इस उपन्यास को वर्तमान समय की विद्रुपताओं से जूझते हुए आम आदमी की समस्याओं, विवशताओं, को केंद्र में रख कर जिस चुटीली भाषा में तीखे प्रहार किए हैं, वे पाठक के हृदय को अंदर तक भेद देते हैं। उन्होंने मलय को इस उपन्यास की सफलता के जश्न और मिलने वाली मोहक बधाइयों से शीघ्र ही मुक्त हो कर, अपने नए उपन्यास को शीघ्र ही पाठकों के हाथों सौंपने हेतु अग्रिम शुभकामनाएँ दी। भारतीय प्रशासनिक सेवा के वरिष्ठ अधिकारी, साहित्यकार विद्वान मनीषी श्री मनोज श्रीवास्तव ने मलय की इस कृति को वर्तमान समय और समाज को आईना दिखाने वाला उपन्यास निरूपित करते हुए कहा कि इस उपन्यास के सभी चरित्रों के बीच हम दिन-रात रहते हैं, बस इन्हें पहचान कर,इनके विरुद्ध संघर्ष कर इन पर विजय पाना है।

लोग भले कहते हों आज की तेज़रफ़्तार ज़िंदगी में लोगों के पास इतना वक्त कहाँ की वे सौ-दो सौ पृष्ठों का उपन्यास पढ़ने बैठें, उन्हें आप एक बार यह उपन्यास पढ़ने दीजिए, जो पहले पृष्ठ से पाठक प्रारम्भ करता है, इसका एक-एक पृष्ठ, बल्कि अतिशयोक्ति न मानी जाए तो इसकी एक-एक पंक्ति में व्यंग्य है, हास्य है, जिसे आप पढ़ते-पढ़ते कभी ऊबेंगे नहीं बल्कि निरन्तर डूबेंगे, इसके हर पृष्ठ को बार-बार पलट कर पुनः पढ़ना चाहेंगे। इस उपन्यास की भाषा शैली अनूठी है जैसे कुनैन की कड़वी गोली (तीखे व्यंग्य) को भी मीठी चाशनी (हास्य) में डुबो कर,यानी चर्म-पादुका, मखमल में लपेट कर, आपको प्रस्तुत की गई है। उपन्यास की भाषा उसके शब्द एकदम काव्य-प्रवाह युक्त हैं,जहाँ इसका व्यंग्य चुभता है,वहीं हास्य गुदगुदाने का अवसर प्रदान करता है, यह हास्य-व्यंग्य की अनूठी, जुगलबंदी इस उपन्यास में देखने को मिलती है। हास्य भी भद्दा, या भोंडा नहीं, इस हास्य-व्यंग्य से पाठक तिलमिलाता है, बिलबिलाता, खिलखिलाता है। उपन्यास में मलय ने कुछ नए शब्द ईजाद किए हैं, कम से कम मेरी दृष्टि इन शब्दों पर कभी नहीं पड़ी जैसे काकटेली विद्या, पादुकोचारम, लपकपन, विचित्रोपचार, अफ़सरोचित, इत्यादि, ये पाठक के लिए बिल्कुल नए शब्द हैं।

उपन्यास जिस गाँव,कस्बेनुमा, शहर के इर्द-गिर्द घूमता है वह गूगल गाँव हैं, इसके समानान्तर एक और छोटे गाँव सलामतपुर का जिक्र आता है। इस उपन्यास का भले कोई केंद्रीय पात्र या नायक न हो परन्तु सख्त मिजाज, कर्तव्य निष्ठ कमिश्नर साहिबा के आस-पास पूरी कहानी घूमती है। इसमें गाँव के कोटवार हल्के सिंह से लेकर, मुंशी गया प्रसाद, राणा रुद्र उर्फ क्षुद्प्रताप सिंह, हेड मास्टर पराशर, अनोखी लाल नेता जी, गड्ढे भैया ठेकेदार, दरोगा लोटन प्रसाद, पटवारी गोटी सिंह, मटुकनाथ वैद्य, गुलबिया बाई, चट्टान सिंह पूर्व अपराधी, दनादन बाबा जैसे अनेक चरित्र मौजूद हैं। ग्राम सेवक, सब-इंजीनियर, बी.डी.ओ. सरपंच पति, क्या -क्या नहीं है। एक से एक छोटी से छोटी बात का सटीक विवेचन किया गया है। आज के तथाकथित ब्लैक मेलिंग करने वाले, मुफ्तखोर पत्रकार, ओछी राजनीति करने वाले मक्कार नेता, भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे ठेकेदार, हमेशा येन-केन-प्रकरेण, अपना उल्लू सीधा कर लोगों को बेबकूफ बनाने वाले शातिर पटवारी, स्कूल में पढ़ाई छोड़ बाकी सब काम करने वाले अध्यापक, बड़ी तोंद वाले दरोगा, कागज़ पर कुएँ खुदवाने वाले अफसर, नकली झोला छाप वैद्य-हकीम, धर्म के नाम

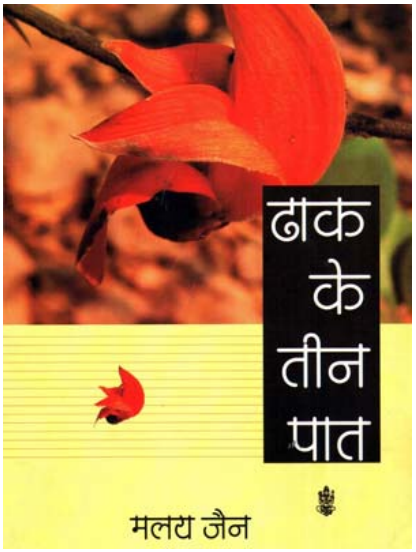

पर अपराधियों का बाबा बन आश्रम चला, लाखों के वारे न्यारे करने वाले तथाकथित ढोंगी और इन सबके चंगुल में फँसा गूगल गाँव का विकास। गूगल गाँव प्रतीक है पूरे राष्ट्र का। कैसे अफसरों के दौरे होते हैं, कैसे लीपा-पोती की जाती है, हर आदमी अपने स्वार्थ में डूबा,अपनी ज़िम्मेवारी दूसरे पर डालता हुआ।

उपन्यास की कहानी पाठक की आँखों के सामने एक जीवंत चल-चित्र की भाँति चलती है, वह पूरे घटना क्रम में हर जगह स्वयं को उपस्थित पाता है। हमारे नैतिक और चारित्रिक पतन की कथा को बेबाकी से बेनकाब किया गया है। एक दम छोटी से छोटी लेकिन राष्ट्र, समाज और आम आदमी के लिए महत्त्वपूर्ण घटना को रचनाकार ने उपन्यास में बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है, यह उपन्यास हमारे मर्म, हमारी सम्वेदना को झकझोरता है, लेखक अपनी बात पाठकों तक पहुँचाने में सफल हुआ है, यह उपन्यास व्यंग्य के क्षेत्र में एक मील का पत्थर साबित होगा, निश्चित ही यह उपन्यास बेहद अनूठा है, इसे मैंने तीसरी बार फिर पढ़ा, उसमें फिर वही नयापन, वही आनन्द, कहीं पुरानापन नहीं, बार-बार कृति में ताज़गी बने रहना, कालजयी कृति होने का प्रमाण है, यह उपन्यास उन चंद कृतियों में शुमार होगा, जिसे पाठक सदैव के लिए अपने निजी सँग्रह में सँजो कर रखना चाहेंगे।

❐❐❐

प्रणाम, जी / एल 434, फेज़ 2, अयोध्या नगर बायपास, भोपाल 462041 मप्र

पुस्तक चर्चा

टुकड़ा टुकड़ा इन्द्रधनुष

समीक्षक : आशा शर्मा

लेखक : आभा सिंह

प्रकाशक : अयन प्रकाशन

आभा सिंह की ये विविध रंगी दस कहानियाँ, जो- टुकड़ा टुकड़ा इन्द्रधनुष- शीर्षक से संगृहीत हैं। संग्रह की सभी कहानियों में इतनी तीव्र संवेदना, भावभंजकता एवं रोचकता है कि वे स्वयं से पाठक को बाँध लेती हैं। इन सभी कहानियों में लेखिका आभा सिंह की एक विशिष्टता है बेहद समृद्ध भाषा एवं खूबसूरत शिल्प के प्रयोग द्वारा वातावरण का सजीव चित्रण। भाषा- शैली की इस प्रवाहशीलता ने कहानियों की जीवन्तता और सम्प्रेषणीयता को और भी बढ़ा दिया है। प्रकृति और परिवेश का सूक्ष्म चित्रण और काव्यात्मक- बिम्बात्मक शैली मन को छू लेती है जैस चक्रवात कहानी की ये पंक्तियाँ.....शाम के झुटपुटे में वह चिड़ियों की उड़ान देख कर ठिमक जाती.....पंखों पर लाल धब्बों वाली छोटी-छोटी काली चिड़ियाँ.....गीत के आरोह- अवरोह की तरह मानों आसमान के विस्तार पर फिसल रही हों।

सजीव उपमाओं से उपमित भाषिक सौंदर्य व शैल्पिक सौष्ठव के अनेक उदाहरण इनकी कहानियों की संप्रेषणीयता बढ़ाते हैं। एक और उदाहरण.....वह खुनकी भरा दिन था। धूप कपासी फूल सी हल्की व गुनगुनी थी। रणकपुर के जैन मंदिर में वे दोनों एक स्तम्भ से टिके बैठे थे.....। इस प्रकार के सुंदर शिल्प और नवउपमाओं से गुँथे वाक्यों में चित्रोपम भाषा शैली कथ्य की प्राणवत्ता का आधार बन गई है जैसे एक स्थान पर कहानी - सुलग गए गुलमोहर- में.....छाया से दिखते कॉटेजों की ढलवाँ छतें, झुरमुटों में लुकाछिपी करती आती - जाती चाँद की रुपहली रोशनी, किसी अनजान पहाड़ी फूल की भीनी सी अजानी गंध उस तक तिर आई है। थ्री- डायमेंशनल तस्वीर सी लग रही है धीरे- धीरे उतरती रात की ख़ामोंश फ़िज़ा.....। अब तो सुलग गए गुलमोहर- मखमली सी भाषा- शैली से अहसासों की उष्मा के बिम्ब उकेरती यह कहानी एक खूबसूरत कविता सा प्रभाव मन पर छोड़ती है। कहानी - एक था वीरेन्द्र- चुनावों में पोलिंग पार्टी के रूप में जाने वाले कर्मचारियों की परेशानियों व मन:स्थितियों का यथार्थ चित्रण है। हार जाने तक- कहानी में एक एसी ब्याहता के अभिशप्त जीवन की दुखद गाथा अभिव्यक्त हुई है, जिसका पति ब्याह की रात ही अपनी रखैल को घर ले आता है। कठोर सैन्य जीवन के कष्टों और सैनिकों की संघर्षपूर्ण दिनचर्या का जीवन्त चित्रण है कहानी - दंश- में। अम्मा जी- कहानी शिथिल होते चले जाते तन- मन और आयु की चुनौतियों से जूझते वृद्ध जीवन का यथार्थ चित्रण है। अँधेरी आँखों के उजाले- नेत्रहीनों के संघर्ष, चनौतीपूर्ण जीवन एवं उनके मनोभावों को समझने का सार्थक प्रयास है। शीर्षक कहानी - टुकड़ा टुकड़ा इन्द्रधनुष में रिटायरमेंट के बाद की ज़िदंगी में आ जाने वाले ख़ालीपन और उद्देश्यहीनता के प्रश्नों व उनके समाधानों को प्रस्तुत किया गया है। मायावी मन- स्वप्न कथा जैसा शिल्प लिए हुए बेहद खूबसूरत कहानी है, जो है तो फ़ैंटैसी -सी लेकिन युवाओं को उम्र के सही दौर में दाम्पत्य जीवन के ख्वाब बुन कर व्यस्त जीवन से सुखों का तालमेल बिठाने का संदेश देती है। ये कहानियाँ शिल्पगत कौशल के साथ संवेदनाओं को रूपायित करते हुए सहज ही मानव मूल्यों को सहेजती- पोसती और पल्लवित करती चलती हैं।

❐❐❐

80/173 मानसरोवर, जयपुर, राजस्थान 302020
ईमेल: abhasingh1944@gmail.com
मोबाइल: 08829059234

समीक्षा

अच्छा, तो फिर ठीक है

समीक्षक : राजेश्वरी

लेखक : कामेश्वर

प्रकाशक : अद्वैत प्रकाशन

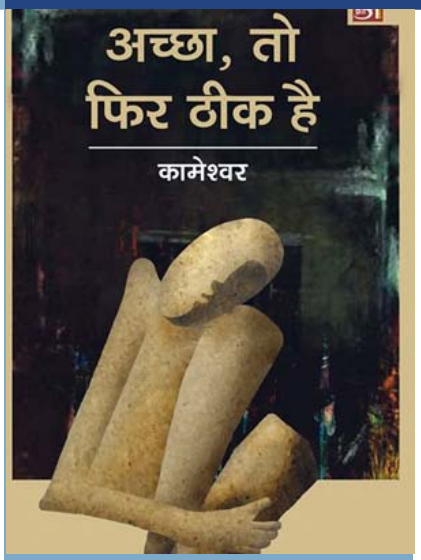

कहानी में शिल्पगत बुनावट का अपना महत्त्व होता है, पर अन्तत: यथार्थपरक मूल्य ही उसे प्रासंगिकता प्रदान करते हैं। यह अपने समय और समाज की समझ और सूक्ष्म पर्यवेक्षण से ही संभव हो पाता है। कामेश्वर की कहानियों में मनुष्य और जीवन के उन पहलुओं पर दृष्टिपात किया गया है जो समसामयिक विमर्श के दायरे से छूटे हुए मालूम पड़ते हैं। इसीलिए हरेक कहानी का अपना एक अलग स्वर है। संग्रह में नौ छोटी-बड़ी कहानियाँ संग्रहित हैं जो कथन, कथादेश, वर्तमान साहित्य, अकार, अक्षर पर्व, पाठ आदि पत्रिकाओं में छप चुकी हैं। इन कहानियों में अन्तर्वस्तु ने शिल्प और शैली को विविधता दी है जिसमें सामान्य घटनाओं के भीतरी यथार्थ की पड़ताल हुई है। सामाजिक मान्यताओं के बरक्स यथार्थ का चेहरा कुछ अलग ही होता है। विडम्बनाओं के कारणभूत सत्य को देख पाने की दृष्टि और तद्जन्य अनुभूति की प्रगाढ़ता इन कहानियों को प्रासंगिकता का वह धरातल देती हैं कि देश और काल का सत्य अपने यथार्थ रूप में प्रकट हो जाता है। बद्धमूल विचारधाराएँ समय के यथार्थ को बहुत-कुछ ओझल कर देती हैं। इन्हें शामिल किए बिना समय का संघर्ष अपनी समग्रता में प्रकट नहीं हो पाता। ये कहानियाँ मानवीय सरोकारों और संघर्षों को उनके समूचे परिप्रेक्ष्य के साथ रूपाकार देती हैं। दमन और शोषण के बदलते पैंतरे, सवर्णों और दलित-शोषित जातियों की सामाजिक भूमिकाओं में बदलाव, राजनीतिक छुटभइयापन, कल्याणकारी राज्य के अवशेषों को बचाने का छिट-पुट संघर्ष, मुक्ति का आस्वाद लेती स्त्री की बेबसी, मनुष्य का सहज शोषक स्वभाव, और साथ ही लहू की कीमत पर परिवार की परवरिश की जी तोड़ कोशिश। अदने-से आम आदमी के संत्रास, बेतुकेपन और विरोधाभासों को उभारती ये कहानियाँ इनसे पार पाने की जद्दोजहद में जीवन की अर्थवत्ता तलाशती हैं।

अच्छा तो फिर ठीक है :कहानी संग्रह
लेखक: कामेश्वर, प्रकाशन: अद्वैत प्रकाशन,
मूल्य: रु. 250/-

पहली कहानी 'निकम्मा' में एक गरीब सवर्ण युवक की त्रासदी है। गरीबी के कारण वह मैट्रिक से आगे पढ़ नहीं पाता। पढ़ भी जाता तो नौकरी मिलने की कोई गारण्टी नहीं थी। पड़ोसी आदिवासी युवक से उसकी गहरी दोस्ती है। उसने मैट्रिक भी पास नहीं किया है, पर उसे मेहनत करने का अभ्यास है। कुछ न कुछ कमा ही लेता है। उसका पूरा परिवार मज़दूरी कर लेता है। उनके राशन-पानी का खर्च आराम से चल जाता है। होटल-सिनेमा जाने पर अधिकतर दोस्त ही पैसा खर्च करता है। उसकी उदारता देख उसे अपने-आप पर शर्म आती है। ग्लानि से भर जाता है। कई बार तो साथ चलने से इन्कार भी कर देता है। पर दोस्त मानता ही नहीं। उसके बिना उसे भी मज़ा नहीं आता। वह कई बार रोज़गार पकड़ने की कोशिश करता है। सरकार से स्व-रोज़गार योजना के तहत ऋण लेकर कुछ करने की कोशिश करता है। पर उसे कामयाबी नहीं मिलती। घर की माली हालत दिनों-दिन खराब होती जाती है। खाने के लाले पड़ जाते हैं। तब वह मनरेगा में काम करने की कोशिश करता है। पहले ही दिन वह गोदी खोदते हुए पश्त पड़ जाता है। उसके हाथ में फफोले पड़ जाते हैं। उसके दोस्त और उसकी पत्नी दोनों उसको गोदी खोदने में मदद करते हैं। वह उनके अहसान से दबा जाता है। समाज जिन्हें छोटी जाति का समझता है उनकी दरियादिली को देख कर उसे शर्म आती है। दूसरे दिन दोस्त जब काम पर जाने के लिए उसे बुलाने आता है तो वह खाट से उठ नहीं पाता। वह बुखार से तड़प रहा होता है। दोस्त उसके हाथ-पाँव दबा कर उसे आराम पहुँचाने की कोशिश करता है। जाते समय उसे ढाढस बँधाता है कि वह भी धीरे-धीरे गोदी खोदना सीख जाएगा। अपना नकारापन उसे कचोटता है। वह निराशा में फीकी मुस्कान लिए उसे देखता रह जाता है। एक सवर्ण के रूप में अपनी कमतरी का उसे गहराई से अहसास होता है।

'टिप्पल' में एक टिपिकल चरित्र है। यह नेता बनते हुए एक छुटभइये की कहानी है। जिसे हम दिल से पसंद नहीं करते होते उसे अनजाने ही सामाजिक स्पेस देते चले जाते हैं और एक दिन वह बहुत बड़ा हो जाता है। वह हम पर शासन करने लगता है। टिप्पल ऐसा ही उभरता हुआ नेता है। उसके कमाने-खाने का सब से बड़ा जरिया है ब्लैक मेलिंग। यह सब वह युवा मोर्चा के नेता के रूप में अपने आकाओं के नाम से करता है। संवेदनहीन होकर अपने जन-समाज को ही वह अपना चारा बना डालता है। स्थानीय उद्योगपतियों और व्यापारियों के लिए आतंक का पर्याय बन चुके साधू भइया की शागिर्दी में धरना-प्रदर्शन और हड़ताल का गुर सीख लेता है फिर उसे अपनी कमाई और नेतागिरी की सीढ़ी बना लेता

है। इसमें उसका अपना परिवार-समाज भी दुख-तकलीफ पाता है। खुद भी कई बार हवालात में बंद हो पुलिसिया मार खा चुका है, पर उसे कोई फर्क नहीं पड़ता। बल्कि उसका दुस्साहस बढ़ता ही जाता है। कई बार उसके स्वार्थ पार्टी के बड़े नेताओं से टकरा जाते हैं तो उसे मुँह की खानी पड़ती है। पर उसका मनोबल कभी नहीं डिगता। ऐसा चरित्र हमारे आस-पास ही होता है। और हम उसे नहीं जानते।

कलाकार के व्यक्तित्व को पहचान समाज से ही मिलती है। गुणग्राहक न हों तो उसका व्यक्तित्व सिकुड़ कर दीन-हीन हो जाता है। समाज की रुचि भी समय के साथ बदलती जाती है और वह पुराने ढंग के कलाकार को भुला देता है। 'कलाकार' के किसन बाबा लीला, रहस, गम्मत के मशहूर उस्ताद रहे। किसन मास्टर के नाम से कौन नहीं जानता था। पर सिनेमा, टीवी, ऑरकेस्ट्रा जैसे मनोरंजन के नए-नए साधनों के आने के बाद लोग उन्हें भूलते गए। बेटा तक नहीं पूछता। विनोद अपनी शादी के मौके पर उन्हें एक कोने में उपेक्षित सा बैठे देखता है तो उसका मन द्रवित हो जाता है। वह किसन बाबा के भीतर के कलाकार को जगाने का उपक्रम करता है। आशीर्वाद समारोह में वह डीजे के बजाय बाबा के संगीत का कार्यक्रम रख लेता है। बाबा को किसी तरह राज़ी कर संगत कलाकार भी जुटा लेता है। कभी उनका शागिर्द रहा रतन भी नर्तकी बन कर निकल आता है। महफिल खूब जमती है। बाबा का वही पुराना कलाकार लौट आता है। उनकी अकिंचनता जाती रहती है।

ऐब या लत आदमी को इतना वलनरेबल बना देती है कि वह ज़िंदगी के लिए ज़रूरी और कीमती चीजों को भी अनायास खो देता है। अन्त में पछतावा ही हाथ लगता है। 'लोहू का दीया' का राजू पेन्टर एक परिवारदार आदमी है। अपनी ज़िम्मेदारियों को समझता है। अपने परिवार की खुशहाली के लिए खूब मेहनत करता है। अपने शराबनोशी की लत से भरसक लड़ने की कोशिश करता है। पर संगति के असर से बहक जाता है और बच्चों की दीवाली मनाने के लिए जोड़-तोड़ कर इकट्ठा किए पैसे को शराब और जुए में गँवा बैठता है। पर आदमी का संघर्ष और जिजीविषा इतनी आसानी से हार नहीं मानती। परिवार के प्रति दायित्वबोध, प्रेम और स्वाभिमान उसे खुद को खतरे में डाल कर भी ज़रूरतों को पूरा करने को मजबूर कर देता है। वह हॉस्पिटल में अपना खून बेच कर दिवाली का सामान लाता है। घर में आते ही कमज़ोरी के कारण वह बिस्तर पर पड़ जाता है। जुए में पैसे गँवा देने के मनस्ताप को चाय की चुस्कियों के साथ घूँट-घूँट पीता हुआ बच्चों की खुशी में गहरे कहीं संतोष का अनुभव करता है।

शीर्षक कहानी 'अच्छा, तो फिर ठीक है' मनुष्य में सहज स्वभाव के रूप में रहने वाले दुमुहेपन और शोषक प्रवृत्ति की गहरी पड़ताल करती है। एक तरफ शोषक को यह मुगालता रहता है कि वह शोषित पर दया कर रहा है, वहीं दूसरी ओर शोषित को यह अहसास नहीं होता कि उसका शोषण किया जा रहा है। उसे तो अपनी मेहनत का मोल भी नहीं मालूम होता। हर एक को यही लगता है कि वह दूसरे को ठग रहा है। कहानी सीधी-सादी शैली में इस तरह कही गई है कि उसमें अन्तर्निहित व्यंग्य ओढ़ी हुई नैतिकता को तार-तार कर देती है। इस तरह यह अमरकान्त की कहानी 'दोपहर का भोजन' की अनायास याद दिला देती है। जैसा कि डॉ. रामबक्ष ने इस कहानी की चर्चा करते हुए कहा है, '...अच्छी कहानी का एक मतलब होता है स्तरीय कहानी। ऐसी कहानी में न ऊँचाई होती है, न अद्भुत-अपूर्व कुछ होता है, जो चौंकाने वाला हो, आपको हतप्रभ करने वाला हो। न बचकानापन हो, न बेवकूफियाँ हों, न छोटी-छोटी भूलें हों...कामेश्वर ने जो पात्र सर्जित किए हैं, उनकी परिस्थितियों का जैसा अंकन किया है, जैसा धीमा, अन्तर्निहित व्यंग्य किया है, वैसा अनुभवी लेखक ही कर सकता है। कहानी में दोनों पात्रों के रिश्तों को जिस तरह से बुना गया है, उसमें कहीं खरोंच नहीं लगती। कहानी में एक मंथरता है, सहजता है, शालीनता है जो व्यंग्य को बहुत गहरा बनाती है। कहानी का शीर्षक जब अन्त में बोला जाता है, तब कहानी अपना बारीक-महीन अर्थ अपनी सम्पूर्णता में खोलती है। शीर्षक की कला की दृष्टि से यह सर्वोत्तम कहानी है' (कथादेश, दिस. 2005, पृ. 11)। बाज़ार में मज़दूर राममिलन की मालिक से मुलाकात होती है। नाममात्र को बाकी रह गए काम को करने के लिए वादे के अनुसार न आ पाने के कारण संकोच से दबा वह अपना बकाया पैसा नहीं माँग पाता। न आ पाने का कारण है उसकी बच्ची का गंभीर रूप से बीमार हो जाना। वैसे उसके न आने से मालिक को कोई खास हर्जा नहीं हुआ था। उस दिन पाँच रुपये का छुट्टा न हो पाने के कारण ही वह दे नहीं पाया था। आज उसे देने के लिए वह अपनी जेब में टटोल रखा था, लेकिन उसकी ओर से माँग न होते और उल्टे उसे ही संकुचित देख कर सिक्के को वह जेब में ही छोड़ देता है और उसके मुँह से निकलता है, 'अच्छा, तो फिर ठीक है'। यहीं पर पाठक को नैतिकता के बिन्दु से सुविधानुसार स्खलन की मनोग्रंथि साफ नज़र आ जती है।

'लालसाओं की लड़ियाँ' बुढ़ापे का फिर से बचपन में ढल जाने की कहानी है। लेकिन बचपन का बचपना जितना प्यारा और आह्लादकारी होता है, बुढ़ापे में वह उतना ही अवांछनीय हो जाता है। दादी अम्मा को कहीं भी कल नहीं पड़ता। चलवा-चलती रही नहीं, लेकिन हर बात में पहले की तरह दखल देना चाहती है। जीवन को समेटना क्या इतना आसान है? सख चलता नहीं, पर हर काम को करने को आतुर। घर के लोग मना करते हैं तो उसे अपनी उपेक्षा जान पड़ती है। बच्चों की तरह बात-बात में रूठती हैं और फिर मान भी जाती है। तीर्थ यात्रा के लिए ज़िद करती हैं। मना करने पर मुँह फुलाए रहती हैं। आख़िरकार बेटे-बहू उसे तीर्थाटन पर ले जाने को राजी हो जाते हैं तो उसका उछाह जाग पड़ता है। एक भिंसार से उसका भजन छूटने लगता है।

इस संग्रह में 'शाह का चोर' बाल मनोविज्ञान की कहानी होने के कारण एक अलग ही आस्वाद देती है। आत्म सम्मान की भावना बचपन में ही घर कर जाती है। यह घरू-संस्कार और लालन-पालन पर निर्भर करता है। बचपन में केवल मज़ा करने के लिए नासमझी में किए गए काम बच्चों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न बन जाते हैं। घर में अच्छे बच्चे होने की एक ऐसी छवि बन जाती है कि उसे बचाए रखने के लिए

बच्चे कुछ भी करने को तैयार हो जाते हैं। दूसरी ओर अगर अच्छे बच्चे की छवि नहीं है तो बच्चे उसकी खास परवाह भी नहीं करते। आत्म सम्मान से ज़्यादा फायदे की बात सोचने लग जाते हैं। कुल मिला कर यह घरू-संस्कार का मामला ही ज़्यादा होता है। बचपन में जैसा पड़ता है, ज़िंदगी भर उसका प्रभाव बना रहता है।

'डूबते जहाज़ पर' में संस्कारों की बेड़ियाँ तोड़ती उस औरत की कथा कही गई है जो मर्दों को सिर्फ देह के दास के रूप में जानती है और समझती है कि अपनी देह के द्वारा वह अपनी हर ख़्वाहिश पूरी कर सकती है। कुछ ख़्वाहिशों को पूरा कर भी लेती है। लेकिन इसके लिए उसे भारी मोल चुकाना पड़ता है। कम उम्र में ही विधवा होने के बाद वह अनुकम्पा नियुक्ति प्राप्त कर स्वतंत्र हो जाती है। सामाजिक बंधनों को तोड़ कर उन्मुक्त जीवन जीने लगती है। यह उन्मुक्तता उसने इसी समाज से सीखी है।

अन्तिम कहानी 'निष्कृति' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है जिसमें आदमी हमेशा एक ऐसे विचार में उलझा रहता है जिसके सिर-पूँछ का उसे पता नहीं होता, लेकिन वही उसे जीवन का सब से महत्त्वपूर्ण काम लगता है। उस अस्पष्ट और काल्पनिक काम के चक्कर में वह ज़रूरी कामों को भी टालता चला जाता है और इस तरह 'बिज़ी फॉर नथिंग' में उलझ कर मन का चैन गवाँ बैठता है।

इन कहानियों में जीवन और समाज की समस्याएँ वही हैं, पर देखने का कोण बदल जाने के कारण कथ्य बदल गए हैं। नए भावबोध के कारण इनका आस्वाद कुछ अलहदा है। कामेश्वर का यह पहला कहानी-संग्रह है। इससे पूर्व उनका हिन्दी में एक उपन्यास 'बिपत' और छत्तीसगढ़ी में दो उपन्यास 'तुँहर जाए ले गींयाँ' और 'जुराव' आ चुका है। इस संग्रह की कहानियाँ उनकी मँजी हुई लेखनी का परिचय खुद दे देती हैं।

❑❑❑

बी-134, आदर्श नगर,
कुसमुण्डा, कोरबा (छग)-495454
मो. 9993117610
ई मेल: rajeshwari.kpp@gmail.com

पुस्तक चर्चा

निब के चीरे से

समीक्षक : विवेक कुमार मिश्र
लेखक: ओम नागर
प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ

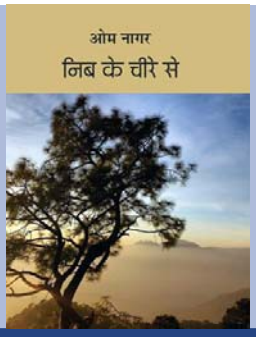

कवि ओम नागर अपनी जीवन अनुभूतियों के साथ 'निब के चीरे से' डॉयरी में मौजूद हैं। यहाँ एक कवि / डॉयरीकार / व स्मृतियों का लेखाजोखाकार से एक साथ साक्षात्कार होता है। अपने समय पर लिखना एक तरह से तलवार की धार पर चलना है। कवि के पास अपना समय- अपनी प्रकृति और अपने से करीब आत्मा व मन में रची बसी अपनी धरती है - खेत खलिहान है - माटी और इस माटी में रह रहे लोग हैं जिनके बिना ज़िंदगी की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ज़िंदगी को जीते हुए संसार में यहाँ से प्रवेश करते हैं ...सब कह रहे है कि समय बहुत ख़राब आ गया है, किसी पर किसी का भरोसा नहीं रहा पर अभी भी बहुत कुछ है पृथ्वी पर पृथ्वी की तरह ...जिसके सहारे जीवन का ...समय का...और मनुष्यपन का विश्वास लौटता है।

बाज़ारी कृत समय में बाज़ार में मनुष्य की खोज ही शायद इस डॉयरी का सबसे कीमती पन्ना है। किस ओर जा रहे हैं ? बाज़ार किस तरह लोगों को हाँक रहा है और इन सबके बीच बेफ़िक्री व आलस्य /आरामतलबी की कीमत पर ही सही मनुष्यता लौट आती है। यह सब देखने के क्रम में जीवन जीने की प्रक्रिया का हिस्सा बन कर आती हैं .....कवि का जीवन और जीना इसी तरह संभव होता है। समय में बहुत कुछ ऐसा होता है जिस पर किसी की निगाह नहीं पड़ती कम से कम उस तरह नहीं पड़ती जैसे कवि की पड़ती है। कवि की दुनिया में चीज़ें एक क्रम से नहीं आतीं हर बात यहाँ एक अलग संदर्भ व जादू लेकर आती है। मनुष्यता की खोज में मानों किसी गहरी बावड़ी के अथाह नीले जल में कवि धीरे- धीरे उतर रहा हो, सच की थाह लेने के लिए कोई हड़बड़ी नहीं और न ही कहीं जाने की जल्दी है। बस बात को पकड़ लेने की ज़िद ही युवा कवि को अपने नज़दीकी संसार में घुमाती रहती है....जहाँ बाज़ार है, बाज़ार में छोटी - छोटी दुकानें हैं, फुरसत के आदमी हैं तो गाँव संसार की वह दुनिया है जिसमें हँसी खुशी के बीच जीवन की हिलोरों में दु:ख की चादरें हैं जो हर संघर्ष में लड़ना / जीना सिखलाती हैं। इस तरह एक जीवित संसार में डायरी के पन्नों के साथ हम सब जीवन के अपने - अपने हिस्से के करीब आते रहते हैं। 'निब के चीरे' से ज़िंदगी के उस यथार्थ को लेकर है जहाँ हमारा क्रूर समय है, भोले- भाले ग्रामीण समाज, कस्बे, नगर व महानगर की वह दुनिया है जिसमें ज़िंदगी की जद्दोजहद के साथ जी रहे इंसान को उसके सुख- दु:ख के साथ न केवल देखा गया है बल्कि किन हालातों की वजह से ये दु:ख है कि जाता नहीं ....जिसे बदलने के लिए ज़िद की तरह से एक इंसान जो कवि है, अपनी सीमा में मनुष्य बना रहना चाहता है और मनुष्यता के लिए वह सब कुछ जतन करना चाहता है जिससे ज़िंदगी की लड़ाई को बेहतर तरीके से लड़ा जा सके। जीवन की घटनाएँ कभी भी इतनी बड़ी नहीं होती कि उनके आगे जीवन हार जाए। यह डायरी अपने समय में जीवन की जंग को बहुत मासूमियत से लड़ती रहती है जीवन है ही मासूम ...जिसे न जाने कितने जतन के बाद कविता कहानी बचा कर रखती है। कविता - कहानी- किस्से - स्मृति मानवीय संरक्षण की वे सारी तकनीकें जिनमें जीवन की गाथा सुरक्षित रहती है के दिन- दिन के इतिहास को कविता / डायरी के सहारे यहाँ जीया गया है। जो है और जो नहीं है और इस क्रम में जो कुछ छूट रहा है उसे ही मनुष्यता के संघर्ष में यहाँ जतन करने का क्रम किया गया है।

❑❑❑

F-9, समृद्धि नगर स्पेशल, बाराँ रोड, कोटा - 324001

समीक्षा

मन कितना वीतरागी

समीक्षक : रेणु
लेखक : पंकज त्रिवेदी
प्रकाशक : विश्वगाथा प्रकाशन

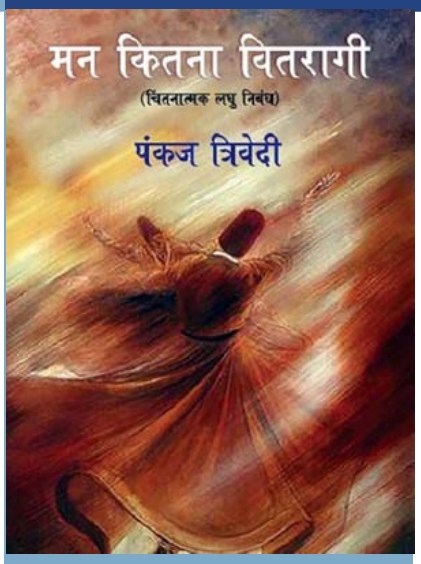

मन कितना वीतरागी है : निबंध संग्रह
लेखक: पंकज त्रिवेदी, प्रकाशन: विश्वगाथा
प्रकाशन, मूल्य: रु. 200/-

'मन कितना वीतरागी' एक निबंध संग्रह है जिसमें छोटे-बड़े अनेक लघु निबंध हैं। कोई भी पुस्तक एक साहित्यकार के विचारों का दर्पण होती है। एक-एक शब्द से सँजोई गई शब्द संपदा में अनथक रचनात्मककर्म और श्रम होता है। इसी तरह इस पुस्तक के ज़रिये पंकज जी के आंतरिक भाव संसार से परिचय हुआ। अलग-अलग विषयों पर उनकी प्रखर दृष्टि जिज्ञासा से भर जाती है।

पुस्तक के प्रारम्भिक लेख में ही लेखक ने निबंध को अपनी आत्मा का अभिन्न अंग बताते लिखा हैं, ''कि - निबंध मुझे अपने साथ यात्रा करवाता है--और मैं उसी यात्रा से अनवरत अपने भीतर की यात्रा का मुसाफ़िर बन जाता हूँ।' इसी आत्म बोध में जीते लेखक की अनेक विषयों पर अपनी अलग अंतर्दृष्टि दिखाई देती है। प्रकृति, नारी और समाज पर उनका चिंतन बहुत गहरा और अप्रतिम है। प्रकृति से उनके मन का संवाद चलता रहता है। वे पेड़ों से मन की बात कहते हैं तो शाम की दुविधा से रूबरू होते उसे अपनी कविता सुनाते हैं। समन्दर की ओर से नदी को भाव पूर्ण उद्बोधन एक नदी के अनवरत संघर्ष को उकेरता है। झील, सूरज की किरनें, तुलसी का पौधा और मछली - प्रकृति के ये अंश लेखक के मन का अभिन्न हिस्सा है।

नीम के पेड़ से बचपन का भाव पूर्ण संस्मरण एक पीढ़ी का अपनी दूसरी पीढ़ी को कई अनुभवों सी वंचित रह जाने का मलाल है। गाँव से आजीविका की तलाश में शहर भाग आए व्यक्ति की वजह से सूने पनघट, खाली खेत खलिहान, चौपालों के सन्नाटे और बैलों की जोड़ियाँ लेखक की स्मृति से कभी ओझल नहीं होते। उन्हें तालाब में नहाते कूदते बच्चों की भी अभी तक याद है। गाँव से अनुराग होते भी शहर की सुविधाओं के आदि हो चुके तन और मन को अब गाँव लौटने की कोई चाहत नहीं है क्योंकि अब वहाँ जीवन जीना सरल नहीं असहज होगा। गाँव लालच में अब शहरों से भी आगे जो बढ़ने लगे हैं। उसके लिए जहाँ खेतों को बेचने से भी ग़ुरेज नहीं किया जाता और वो अतीत की रौनकें भी ओझल हो चुकी हैं। फिर भी गाँव रूपी जड़ों से जुडा 'वीतरागी मन' कभी गाँव को नहीं भुला पाता। अपनी जड़ों से जुड़े लेखक की स्मृतियों में सँजोया गया गाँव, बचपन के साथी, संस्कार, माँ की सीख सभी कुछ ज्यों का त्यों है। गाँव की पगडंडियों पर बीते बचपन की कई यादें अक्सर उसके मन को झझकोरती हैं, जिन्हें सुनाने का लेखक का अपना ही अंदाज़े बयाँ है। शब्दों में सादगी भरी निरंतरता आख़िर तक बाँधे रखती है। 'पैदल यात्रा' में अपने बचपन की कहानी सुनाते वे अपनी माँ के बचपन तक जा पहुँचते हैं। जिसे उन्होंने अपनी आँखों से नहीं देखा अपितु पिछली पीढ़ी की किस्सागोई के ज़रिये ये बात उन तक पहुँची है। इसी यात्रा में वे बचपन से लेकर आज तक की यादों से मिलते आगे बढ़ते हैं और शहर में समा जाते हैं। वे भीतर व्याप्त करुणा और संवेदनाओं का श्रेय अपने गाँव को ही देते हैं जिसे वे इंसानियत को अर्पित करना चाहते हैं।

प्रेम को आज तक ना जाने कितनी बार परिभाषित किया पर इस पुस्तक में प्रेम को जिस नज़रिये से देखा गया वह अन्यत्र दुर्लभ है। लेखक का मत है, ''प्रेम स्वयं प्रकाशित ज्योति है, जिसका अर्थ किसी अन्य के जीवन में समर्पित उजास फैलाने से है।'' वे मानते हैं प्रेम में सात्विकता ही उसकी सच्चाई है। बड़े साहस से लेखक ने स्वीकारा है कि ''चाहत मेरा स्वभाव है और समर्पण मेरा संस्कार।'' इसी प्रेम के वशीभूत लेखक ने हर उस रिश्ते को सम्मान दिया है जो औचारिक रिश्तों की श्रेणी में नहीं आते हुए भी हर इन्सान के जीवन का अहम हिस्सा बनकर जीवन के पथ को अपनी प्रेरणा से आलौकित करते हुए जीवन में साथ साथ चलते रहते हैं। ये सर्वथा दिव्यता से भरे हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहते हैं।

अतीत के प्रणेताओं को लेखक का बहुत ही भावपूर्ण उद्बोधन मन को भिगो जाता है क्योंकि कोई भी सफल व्यक्ति सिर्फ अपनी वजह से सफलता के शिखर नहीं छू सकता अपितु उसकी संघर्ष यात्रा में अनेक लोग प्रेरणा देते हुए समानांतर चलते हैं, पर मिलना और बिछुड़ना जीवन का नियत कर्म है। अपने प्रणेताओं को कृतज्ञता से पुकारते हैं और उनके प्रति अपना अशेष स्नेह समर्पित करते हैं। लेखक ने स्वयं को एक फ़क़ीर की संज्ञा दी है। सच कहूँ तो ये पुस्तक लेखक के भावों और सूक्ष्म संवेदनाओं की अंतर्यात्रा है - जिसमें एक आत्मवैरागी और मौनव्रती सा लेखक अपनी भावनाओं को पद्यात्मक गद्य में पिरोता नज़र आता है। जीवन में अनायास उमड़ती महीन सी हसरतें, क्षणिक भाव और समस्त वेदना चंद शब्दों में ही प्रवाहित हो पाठक के मन में समा जाती हैं। मौन को

लेखक ने जीवन का बेहतरीन संवाद मान कर कई रचनाओं में मौन को प्रखरता से प्रतिष्ठित किया है तभी तो मौन से संवाद कर तन्हाई को अपने जीवन में लौट आने का आग्रह किया है। जहाँ अपने आपसे संवाद हो, अपने अंदर की गहराई में उतरने का उपक्रम हो ताकि वो खुद को आसानी से समझ पाए और बेबाकी से भीतर समाई स्मृतियों की छवियों से रूबरू हो सकें। इसी क्रम में समाज के कई दृश्य पुस्तक के पृष्ठों पर साकार होते नज़र आते हैं। चौराहा, फूटपाथ, बंजारा, भूचाल आदि रचनाओं में उनके चिंतन का भिन्न रूप नज़र आता है।

मुझे पुस्तक में नारी विषयक लेखों ने बहुत प्रभावित किया है। जहाँ लेखक ने नारी के विभिन्न रूपों को नमन करते हुए उसकी महिमा को नमन किया है। माँ के ना होने के बावजूद भी माँ के लिए उनके मन में अपार स्नेह है। आज भी वे माँ को अपनी प्रेरणा मानते हुए उनसे मन का संवाद करते हैं। संसार में चाँद को मामा कहा जाता पर माँ के ना होने की दशा में उसका लेखक की आंतरिक पीड़ा से विरक्त होना लेखक को खल जाता है और वो उसे उलाहना देने से खुद को रोक नहीं पाता। इसी उपालम्भ से जनित एक भावपूर्ण रचना इस निबंध संग्रह का अहम निबंध है। पत्नी में भी लेखक को नारी के अनेक रूप नज़र आते हैं। जहाँ उसका विकल मन हर पीड़ा से राहत पाते हुए सुखद अनुभव से गुज़रता है। वे उसे प्रियतमा के रूप में भी देखते हैं तो वात्सल्य लुटाती ममता की देवी के रूप में भी। उसके निर्मल प्रेम की आभा में अपनी चेतना को आत्मसात कर अचम्भित हो अंत में कह उठते हैं –''तुम औरत भी हो और ईश्वर भी।'' अधूरेपन को पूर्णता की ओर ले जाने के प्रयत्न में एक अंतहीन यात्रा की ओर अग्रसर होने की चाह है। अंत में मुझे इस पुस्तक के रूप में अध्ययन का एक अलग अनुभव प्राप्त हुआ जिसके दौरान मैंने अनुभव किया ये एक कवि की संवेदनाओं का बहुत अनुपम संसार है। जिसे पढ़ने के दौरान हम अलौकिक आनंद से गुज़रते हैं। ये निबंध कवि का वीतरागी मन है जहाँ भावनाओं का बहुरंग संसार मन को विस्मय से भर व्यापक चिंतन की ओर ले जाता है।

❑❑❑

पुस्तक चर्चा

पुरवाई

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

लेखक: कृष्णा अग्निहोत्री

प्रकाशक : अमन प्रकाशन

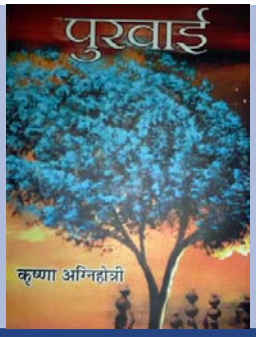

कृष्णा अग्निहोत्री ने प्राय: नारी-जीवन पर विस्तार और प्रमाणिकता के साथ लिखा है, लेकिन समाज के वंचित और शोषित वर्ग के हित की चिन्ता भी उनके उपन्यासों में जहाँ-तहाँ है। अपने नीलोफर उपन्यास में उन्होंने आदिवासी समाज की कुछ विसंगतियों और समस्याओं पर केन्द्रित है।

'पुरवाई' में आदिवासियों की नियति के माध्यम से जनतांत्रिक वयवस्था के अन्तर्विरोध भी उजागर हुए हैं। स्वराज्य, सरकार आदि अवधारणाएँ उनके लिए छलावा भर हैं। रामू ने वितृष्णा पूर्वक कहा है- काहे का स्वराज्य? कैसे झंडे उड़ाते गाने बजाने हैं- 'ये देश की धरती सोना उगले देश की' हमें तो तन पर दो कपड़ा भी नहीं नसीब। उम्मीद थी कि सरकारी योजनाओं का लाभ अभावग्रस्तों को भी मिलेगा। लेकिन कोसी जैसे आदिवासियों को निराशा ही हाथ लगी। भारत स्वतंत्र हुआ, इतने बरस वो प्रतीक्षा करता रहा कि सरकार आएगी, उसको खेत का पट्टा देगी..... पर सरकार गाँव तक न आई। फलत: समता समानता सामाजिक न्याय के आश्वासन अधूरे रहने ही थे। स्वतंत्र भारत में आदिवासी औरतों की स्थिति बदतर हुई है। उपन्यास में नरेश आदि अध्यापकों के प्रयास से स्त्रियों भी स्वाबलम्बी और चेतना सम्पन्न हुई है, शेर को मारने में भंवरी आदि युवतियाँ साबित करती हैं कि वे पुरुषों से कम नहीं हैं। उपन्यासकार ने क्षोभपूर्वक देखा है कि कई तबकों का संकुचित नज़रिया लोकतंत्र और राष्ट्रहित को विकसित नहीं होने दे रहा है फलत: सामाजिक टकराव बढ़ रहा है। लेकिन यह अच्छा है कि दलित और पिछड़े अपने इतिहास बोध की ज़मीन पर ऐसी शक्तियों को चुनौती दे रहे है 'लाल सलाम' की जगह 'जयहिन्द' जै भारत माता के नारों को समझाना है- इस वक्तव्य से लग सकता है कि किसी निश्चित दृष्टि के तहत आदिवासियों के उत्थान की कल्पना कृष्णा जी के मन में है। 'सलवा जूडूम' जैसे संगठनों को प्रोत्साहित करने को 'अपराधीकरण' मानना भी इस संदर्भ में ध्यानाकर्षक है। स्वाबलंबन और अपने बूते पराशोषक और अपराधी तत्वों से संघर्ष उपन्यास का मूलमंत्र है जो एक काव्य-पंक्ति से भी व्यंजित हुआ है- दियों ने ठान ली है अंधेरे से लड़ाई की, हम जीतेंगे। उपन्यास रामू भील और उसकी पत्नी रामकली के बहाने आदिवासी जीवन के यथार्थ से मुठभेड़ करना है। बाद में कमली, गीता, सलोनी, कृष्णा आदि की व्यथा कथाएँ जुड़ती चली जाती है। अभाव, भूल, शोषण, धर्मान्तरण, कर्ज आदि कुरूपताएँ अनाकृत हुई है। कृष्णा अग्निहोत्री ने कहीं सीधे तो कहीं - कहीं प्रकारान्तर से उनकी नियति का वर्णन किया है।

कुछ पाठकों को लग सकता है कि अध्यापकों को आदिवासियों में चेतना-संचार का दायित्व सौंपना कहाँ तक उचित है? किसी संगठन विशेष को यह ज़िम्मेदारी सौंपी जाती तो बेहतर था। आज से लगभग दस वर्ष पूर्व प्रकाशित एक टिप्पणी (इंडिया टुडे, सात नवम्बर 2007 ई.) में नारायण राव और उनकी पत्नी द्वारा आदिवासियों के बच्चे को शिक्षित करने के प्रयास को सराहा गया है। अभी हाल ही में एक अध्यापक महेन्द्र के प्रयासों के सकारात्मक परिणाम मिलने की सूचना मिली है। ज़ाहिर है, समर्पित, समझदार अध्यापक आदिवासी समाज को दिशा देने में सफल रहें हैं। ठंडी पुरवाई का अहसास इस उपन्यास में नरेश आदि के सपनों और प्रयासों का सफल है।

❑❑❑

डी 131 रमेश विहार, अलीगढ़-202001 मो. 09837004113,

समीक्षा

51 किताबें ग़ज़लों की

समीक्षक : डॉ. नितिन सेठी
लेखक : नीरज गोस्वामी
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

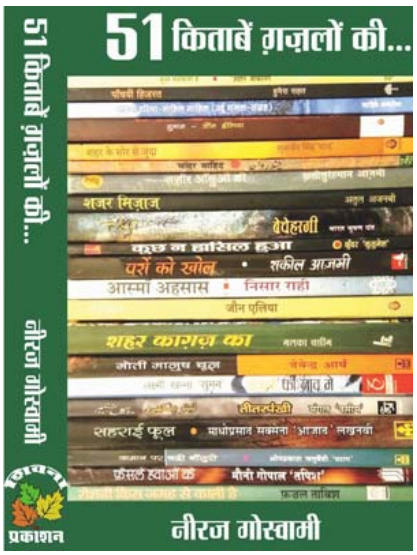

ग़ज़ल आज भी काव्य की सबसे लोकप्रिय विधाओं में से एक है। जितनी आज ग़ज़ल कहने-लिखने वालों की संख्या है, उससे कहीं अधिक इसे संगीतबद्ध करके गाने वालों की और इसे पढ़ने वालों की भी संख्या है। आज प्रत्येक भाषा में ग़ज़ल कही जा रही है। इसे प्रशंसा देने वाले पाठकों का अपना एक अलग वर्ग है। ग़ज़ल के इतिहास, इसके व्याकरण-शिल्प पक्ष और दार्शनिक चेतना पर बहुत कुछ लिखा - कहा जा चुका है। प्रत्येक पाठक का अपना एक नज़रिया होता है जिसके अनुसार वह शायरों और उनकी शायरी का मूल्याँकन करता है। यह मूल्यांकन कभी तो सम्पूर्ण काव्यभाषा के सिद्धांतों को लेकर होता है तो कभी पाठक की अपनी सोच और विषयगत अनुभव के अनुसार। उल्लेखनीय है कि इन दोनों ही परिस्थितियों में मूल्यांकन-मीमांसा के नवीन आयाम उद्घाटित होते हैं।

प्रख्यात ग़ज़ल-समीक्षक नीरज गोस्वामी की सद्य प्रकाशित पुस्तक '51 किताबें ग़ज़लों की' इस दिशा में एक और सार्थक प्रयास है। प्रस्तुत पुस्तक में अपनी पसंद की विभिन्न शायरों द्वारा रचित 51 ग़ज़ल कृतियों पर कलम चलाई है। इन 51 नामों में कुछ नाम बहुचर्चित व बहुपठित हैं, वहीं कुछ नए शायरों को भी जगह दी गई है। आलेखों का आरम्भ युवा शायर मेजर संजय चतुर्वेदी के ग़ज़ल संग्रह 'चाँद पर चाँदनी नहीं होती' से होता है। ग़ज़लों को उदाहरणस्वरूप रखते हुए उन पर सुसंदर्भित टिप्पणियाँ, नीरज जी की ग़ज़ल को जानने-समझने की अभिवृत्ति को प्रमाण देती हैं। लगभग सभी आलेखों का आरम्भ शायर की पँक्तियों से किया गया है जिससे पाठक को एक झलक में ही सारे कलाम की सुंदरता महसूस हो जाए। इसके बाद नीरज धीरे-धीरे पाठक को संबंधित शायर / शायरा का व्यक्तित्व दर्शाते हैं। जीवन निर्माण में परिवेश और परिस्थितियाँ बहुत सहायक होती हैं। इन बातों से आगे बढ़ते हुए पाठक को शायर के कृतित्व का परिचय मिलता है। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि नीरज इन तथ्यों को गुणगाथा के रूप में प्रस्तुति नहीं देते बल्कि वे एक प्रकार का रेखाचित्र-सा पाठक के समक्ष बनाते चलते हैं।

इन आलेखों में उदाहरण के रूप में जो अशआर या ग़ज़लें रखी गई हैं, उनका चयन पूर्णतया नीरज जी का ही है। यह बात इसलिए भी लिखनी पड़ती है कि अनेक स्थानों पर पाठक लेखक के विचारों-वक्तव्यों से सहमति नहीं रख सकता होगा परन्तु महत्त्वपूर्ण तथ्य यह भी है कि नीरज जी किसी प्रकार की सहमति-असहमति का दावा भी प्रस्तुत नहीं करते। अपनी रागात्मकता और बौद्धिकता के समन्वित अभिव्यक्तिकरण में उन्होंने अपनी ऊर्जा और पाठकीय समझदारी को ही आगे रखा है और यही बात आवश्यक भी है। ग़ज़लों की समीक्षा में शिल्प व कलापक्ष को अधिक महत्ता न देते हुए भावपक्ष को उभारा गया है यह ठीक भी है। ग़ज़ल का अपना व्याकरण कड़ी मेहनत और धैर्य माँगता है। यह गुण धीरे-धीरे ही विकसित हो पाता है। परंतु सुंदर भाव हर कोई माला के मोतियों की तरह पिरो सकता है। नीरज इन्हीं 51 मोतियों की चमक को प्रस्तुत पुस्तक के आलेखों के माध्यम से रखते हैं। भाव पक्ष में रचनात्मकता और सर्जनात्मकता का समाकलन करते समय नीरज जिस एक मूलभूत तत्व पर ज़ोर देते हैं, वह है शायर का 'नैसर्गिक कहन' उस सहजता-सरलता-प्रवाहमयता का शब्दीकरण नीरज हर आलेख में करते हैं जिसके कारण उन्होंने उस शायर को अपने लेखन का विषय बनाया है।

इन आलेखों में नीरज का अध्ययन व चिंतन तो दर्शनीय है ही, साथ ही साथ उनका पाठकीय विवेक भी उल्लेखनीय है। अपनी बात को विभिन्न काव्य पंक्तियों के साथ-साथ वे विभिन्न लेखकों-विचारकों के कथनों को भी उद्धृत करते चलते हैं। इन संदर्भों के माध्यम से नीरज अपनी बात की संप्रेक्षणीयता भी बढ़ाते हैं। अधिकांश शायरों से नीरज के व्यक्तिगत सम्बंध भी हैं जो इन आलेखों में महसूस किए जा सकते हैं। यह पुस्तकों-शायरों व साहित्य के प्रति नीरज की दीवानगी ही कही जा सकती है और आज के भागमभाग के युग में प्रशंसीय-वंदनीय भी है।

प्रस्तुत पुस्तक के अधिकांश आलेख नीरज ने अपने ब्लॉग और फेसबुक पर लिखे हैं शायद इसीलिए ये आलेख संवाद शैली में रचे गए हैं। लेखक अनेक जगह जब लिखता है 'मैं आपको सुनाता हूँ', 'आप ये शेर देखिए', 'आज हम पेश करते हैं', तो मानों पाठक सर्वतोभावेन लेखक से जुड़ता चला जाता है।

❐❐❐

सी-231, शाहदाना कॉलोनी
बरेली-243005 (उ.प्र.)
मो. 9027422306

बात फूलों की

समीक्षक : पारुल सिंह
लेखक: सर्वजीत सर्व
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

जहाँ लफ़्ज़ सफ़े पर फूलों से बिखरे हों, जहाँ प्यार, प्रीत और बेशर्त महब्बत के रेशमी अहसास पंक्तियों में गुँथे हों। और पढ़ते-पढ़ते हल्का, बहुत धीमा-सा जल-तरंग भी आपको सुनाई देने लगे तो यकीन जानिए आप सर्वजीत सर्व को पढ़ रहे हैं। और अगर यह किताब उन की नई किताब ''बात फूलों की'' है तो संभव है आपको फूलों की महक भी अपने आसपास महसूस होने लगे।

कुछ लोग प्रेम लिखते हैं, कुछ क्या बहुत से लोग प्रेम लिखते हैं, कुछ लोग प्रेम को जीते हैं पर कुछ लोग आपका प्रेम लिख देते हैं।

ऐसी ही हैं सुविख्यात कवियत्री सर्वजीत सर्व जी। सर्व जी की किताब ''बात फूलों की'' उनकी पाँचवीं किताब है। इससे पहले उनकी किताबें ''कुछ फूल अमलतास'' के (कविता-संग्रह) ''मैं ग़ज़ल बनूँ तुम्हारी'' (ग़ज़ल-संग्रह) त्रि-अंजलि (क्षणिकाएँ) किमखाब सी ये ज़िंदगी (कविता-संग्रह) आ चुकी हैं। ''बात फूलों की'' इनका नया ग़ज़ल-संग्रह है। इस किताब के साथ सर्व जी ने अपने चिरपरिचित अंदाज को ग़ज़लों में ढाल दिया है। कहते हैं ग़ज़ल का मतलब महबूब से बात करना होता है, वाकई इस किताब का हर शेर जैसे महबूब को ही संबोधित करता है। अनकंडीशनल लव के साथ जीवन के दूसरे पहलुओं पर भी सर्व जी की कलम चली है।

बात फूलों की : ग़ज़ल संग्रह
लेखक: सर्वजीत सर्व, प्रकाशन: शिवना प्रकाशन, मूल्य: रु. 150/-

पर वह शिकायत भी ऐसे लहजे में करती हैं कि लफ़्ज़ों तक को एहसास नहीं होता कि हम में कोई तल्ख़ी भी भरी हुई है। कोई प्यार की मूरत हो, कोई दिल हीरे का लगवा लाया हो। उसी की शिकायत इतने गैर- शिकायती अंदाज़ में हो सकती है। सर्व जी का स्त्री-विमर्श बहुत सुलझा हुआ है। कहने, सुनने से ऊपर उठ चुका हो जैसे। पर वे महसूस करा देती हैं कि वे वाक़िफ हैं। दोस्तों यह वाक़िफ होकर भी पलटवार ना करना वार से भी ज़्यादा खतरनाक होता है। हार से पहले ही हार जाता है इस में सामने वाला।

ग़ज़ल में ग़ज़लियत का होना ज़रूरी होता है।और सर्व जी की ग़ज़लों में वह ग़ज़लियत भरपूर है। आजकल एक नई व अच्छी बात ग़ज़ल कहने में ये आ गई है कि कहन के साथ-साथ काफ़िया रदीफ़ के नियमों को लेकर हल्की सी नरमी बरती जाने लगी है। यदि कहन में बात सही-सही संप्रेषित कर दी गई है और पाठक या श्रोता के दिल तक पहुँच रही है। मैं कोई आलिम फ़ाजिल तो अदब की हूँ नहीं, जो इन ग़ज़लों की बहर नाप सकूँ। पर यह कहती हूँ कि दिल में सीधा उतर जाती हैं ये ग़ज़लें।

ज़िंदगी को इसके सहज, सरलतम रूप में जीने की पैरवी करती सर्व जी अपनी ग़ज़लों में भी अपनी फ़कीरी तबीयत के साथ ही नज़र आती हैं और जब रूमानियत की बात करती हैं तो उफ़ बस कयामत ही ढा देती हैं।

बहुत इतरा के देखो बह रही है
हवा ने आज तुमको छू लिया क्या
सोचती हूँ मैं तुझे रात के अँधेरे में
चाँद छुप कर मेरे दालान में आ जाता है

हौसले और हिम्मत की ताकीद करते हुए सर्व जी कहती हैं

ज़िंदगी में कभी थक के बैठे अगर
पाँव के छाले हिम्मत बढ़ाते रहें
चरागों का नया यह हौसला है
बिगाड़ेगी भला अब क्या हवाएँ

अपनी ज़िंदगी की पूरी ज़िम्मेदारी खुद पर ही लेती हुई शायरा ज़िंदगी की कड़वी सच्चाई को सामने रखने में अपनी लेखनी से कोई कंजूसी नहीं बरतती हैं। अपनी असफलताओं और अभावों का ज़िम्मा हालात या जमाने पर रख देना तो सरल होता है।

तोड़ डाले थे जो दीपक मैंने सूरज देख कर
रात ढलने पर सभी को जोड़ती रहती हूँ मैं
टूटने में रिश्तों के, दोष कुछ नहीं अपना
कुछ अना तुम्हारी है कुछ अना हमारी है

एक अदृश्य शक्ति के हर वक्त हमारे साथ होने का भी सर्व जी अनुभव करती हैं।

सिवा बस इस कमाई के जहाँ में कुछ नहीं रहता
कमाएँ आप वो दौलत जिसे अच्छाई कहते हैं
खुदा तो वही वो न बदला कभी
दीन इंसानों के ही बदलते रहे

माँ पर लिखे गए सर्व जी के तमाम शेर व कविताएँ पाठक की आँखें भिगो जाती हैं।

माँ एक स्थाई विषय है सर्व जी की रचनाओं का चाहे ये उनकी ग़ज़लें हो या उनकी कविताएँ।

माँ पर यूँ तो बहुत लिखा जा चुका है पर सर्व जी की बात ही

अलग है।

मेरी माँ यूँ लगे जैसे हमेशा पास होती है
यहाँ वरना मुझे लोरी सुनाने कौन आता है

सब्र की घुट्टी पिलाई माँ ने जब
ज़िन्दगी से कुछ न फिर शिकवा हुआ

सर्व जी की शायरी, ग़ज़लें ताज़ी हवा के झोंके सी है, जो कानों के पास से गुज़रते हुए एक मीठी सिहरन सी दे जाती हैं।

प्रकृति प्रेम सर्व जी के ग़ज़लों में बिखरा मिलता हैं। वो चाँद हो, ओस हो, के नदी सर्व जी जैसे प्रकृति के सारे खूबसूरत नक्शे अपनी ग़ज़लों में खींच देती हैं।

अपनी ग़ज़लों में लफ़्ज़ों को बहुत चतुराई से प्रयोग करती हैं सर्व जी। नई बात हो या किसी पुरानी ही बात का ज़िक्र हो सर्व जी अपने खास अंदाज़ में उसे पेश करती हैं। बेहद जटिल भावनाओं को भी सर्वजीत जी सहज भाव से अपने अशआर में उतार देती हैं।

ज़िन्दगी के सख्त व निराशा भरे एहसासों को भी सर्व जी लफ़्ज़ों के टिमटिमाते सितारों से ग़ज़ल में टाँक देती हैं। ग़ज़ल कहना आग का दरिया पार करना हो जैसे हौसले के बिना इस राह पर नहीं चला जा सकता। अपना हुनर नहीं तराशा जा सकता।

फूलों से नाज़ुक नरम महकते अशआर वाली इस किताब का शीर्षक ''बात फूलों की'' के अलावा और हो भी क्या सकता है। शिवना प्रकाशन सीहोर से प्रकाशित यह पुस्तक बेहद खूबसूरत कवर पेज के साथ आई है। उत्तम पेपर क्वालिटी व छपावट के साथ आई यही वह पुस्तक है जिसे पढ़ते-पढ़ते सीने पर रख कर किताबों के दीवाने सो जाया करते हैं। कितना भी इन्टरनेट का ज़माना आ जाए किताब के साथ उसे पढ़ते हुए जो रिश्ता पाठक का बनता है वह अद्भुत व भावनात्मक होता है। कॉफी टेबल बुक के आकार में आई ये पुस्तक घर के जिस कोने में भी आप रखेंगे उस कोने को महकाती रहेगी।

❐❐❐

डब्ल्यू 903, आम्रपाली ज़ोडिएक, सेक्टर 120, नोएडा 201301, उत्तरप्रदेश
मोबाइल 9871761845
ईमेल : psingh0888@gmail.com

पुस्तक चर्चा

तुम्हारे जाने के बाद

समीक्षक : प्रकाश हिन्दुस्तानी
लेखक: कृष्णकांत निलोसे
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन

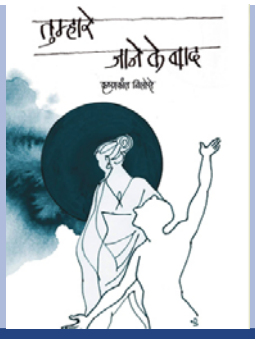

तुम्हारे जाने के बाद कृष्णकांत निलोसे का पाँचवाँ काव्य संग्रह है। वे हिन्दी के अलावा अंग्रेज़ी में भी लिखते रहे हैं और उनकी रचनाएँ देशभर के पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही है, लेकिन इस संग्रह की कविताएँ ऐसी प्रेम कविताएँ है, जो उन्होंने अपनी प्रेयसी और पत्नी इंदु के लिए लिखी है।

कृष्णकांत निलोसे ने भूमिका में ही लिखा है कि इन कविताओं का उद्भव दु:ख की नाभी से हुआ है, ये कविताएँ दु:ख की जड़ से उपजी कविताएँ है, जो विषाद की गोद में पोषित हुई है। किसी व्यक्ति का होना अतीत हो सकता है। किन्तु उसके साथ बिताया हुआ पल कभी न भूलने वाली स्मृति बन जाता है। निलोसे जी ने लिखा है कि ये कविताएँ मेरी आत्मा के अधरों पर रखी वो बाँसुरी है, जो मुझे जीवन की गर्त से उबार, सरगम के अलौकिक सुरों के माध्यम से, आनंद की उस भाव स्थिति में ले जाती है, जहाँ मृत्यु का पीड़ा-भाव, प्रेम के शाश्वत संसार की रचना करता है। ज़ाहिर है निलोसे जी को गहरी पीड़ा और विषाद से बाहर निकालने में इन कविताओं का योगदान रहा है, जिसे उन्होंने अपने पाठकों के साथ साझा किया।

कवि ने अपनी पत्नी के होने और चले जाने की पीड़ा, प्रश्न और भाषाहीन हो जाने की सीमा को छुआ है, जिस कारण ये कविताएँ विशिष्ट बन गई है। संग्रह की शुरूआत 'समुद्र ही रही अंतत:' शीर्षक कविता से होता है और दूसरी ही कविता है 'उसके जाने के बाद'। कविता की कुछ पंक्तियाँ इस तरह है -

'सब कुछ खो जाने के बाद,
आख़िर,
बचा रह जाता है
मुठ्ठी में बंद सुर्ख गुलाब
जो अभिसार के वक्त
जूड़े में टाँका था'

संग्रह की तीसरी कविता में उन्होंने अपने जीवन की ऊब का ज़िक्र किया है और फिर सौंदर्य बोध से होती हुई उनकी कविताएँ लगातार आगे बढ़ते जाती है, जिनमें विरह की वेदना और अनुभवों का बोध है। निलोसे जी ने लिखा है कि हम तुम देह बनाकर मिले ही कब थे। बड़ी गूढ़ बातें इस संग्रह में लिखी हैं। वे आशान्वित भी हैं और वह आएगी ज़रूर लिखते हुए इंतज़ार भी बयाँ करते है। बीच-बीच में खामोशी में झरते वियोग, अपने जन्मदिन की स्मृतियाँ, भुलक्कड़ स्वभाव, आत्मा के रूदन और मौन स्पर्श की चर्चा तो है ही। अनंत से संवाद भी है।

ये सभी 61 कविताएँ असाधारण किस्म की हैं और उन्हें पढ़ने और समझने के लिए एक खास तरह के मूड की ज़रूरत होती है। संवेदना के स्तर पर ये कविताएँ बहुत खरी हैं। ये जानना सुखद है कि 1931 में जन्मे निलोसे साहब सक्रिय हैं। कविताएँ लिख रहे हैं और ज़िंदगी के अर्थ नए तरीके से समझ रहे हैं और समझा भी रहे हैं।

❐❐❐

एफ. एच. 159, स्कीम नंबर 54, विजय नगर, इन्दौर 452010
मोबाइल : 9893051400
ईमेल : prakashhindustani@gmail.com

समीक्षा

हाईवे E 47

समीक्षक : गोविन्दप्रसाद बहुगुणा
लेखक: अर्चना पैन्यूली
प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन

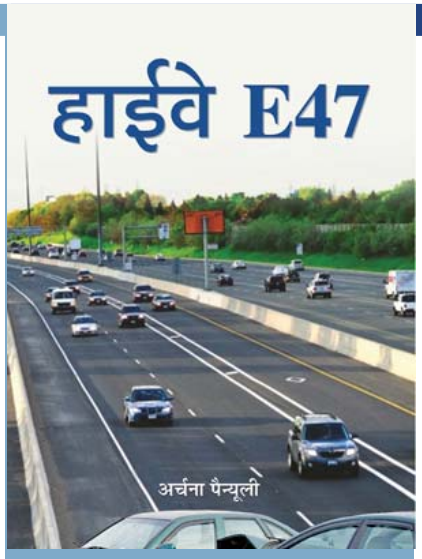

अर्चना पैन्यूली के अभी हाल में प्रकाशित कहानी संग्रह ''हाईवे E 47'' को पढ़कर मुझे ऐसे लगा जैसे मैं स्वदेशी संवेदना और भावुकता से ओतप्रोत कोई विदेशी कहानी पढ़ रहा हूँ -उसमें कुछ घटित यथार्थ है और कुछ कल्पना। लेकिन उनकी शैली में विदेशी खुलापन और स्पष्टवादिता के साथ मर्यादा को बनाए रखने का छिपा हुआ मोह भी है क्योंकि उनके पाठक तो अधिकतर हिन्दुस्तानी हैं। लेखिका ने अपने देश के और विदेश के नागरिकों के हाव-भाव और प्रतिभाव को बड़ी बेबाकी से प्रदर्शित किया है। दुनिया के दूसरे छोर में निवास कर रहे भारतीय समाज की कुंठा और संस्कारों के प्रति उनके मोह को भी उन्होंने स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। उनके लेखन की भाषा में प्रेटेन्शन नहीं है, जीवन के यथार्थ को उन्होंने भाषा के जाल से ढकने की कोशिश नहीं की है। लेखक युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करती हुई लगती हैं क्योंकि वह भी स्वयं युवा ही हैं, इसलिए पिछली पीढ़ी की हिन्दुस्तानी कहानी लेखिकाओं की लेखन शैली में और इनकी शैली में अंतर साफ़ नज़र आता है। उनकी कहानियों का पाठकवर्ग भारत में ही नहीं विदेश में भी बढ़ रहा है। एक अच्छी बात यह है कि वह डेनिश और इंग्लिश भाषा में बखूबी रवाँ हैं इसलिए उनके लेखन में विदेशी भाषा का स्वाद भी मिलता है, लेकिन वह किसी भी तरह उनकी मातृभाषा हिंदी पर हावी नहीं है - उनके वर्णन और अभिव्यक्ति में भारतीयता सहज रूप से प्रवाहित होती दिखाई देती है। अक्सर ऐसे होता है कि हिंदी में लिखते समय जब आप विदेशी अंदाज़ में कोई बात कहने का प्रयास करते हैं तो वह अनुवाद की भाषा जैसे लगती है उसमें सहज प्रवाह नहीं दिखता लेकिन अर्चना जी की भाषा में स्पॉनटेनिटी है, कहीं न अटकाव है और न प्रर्दशन की कांक्षा।

हाईवे E 47 : कहानी संग्रह
लेखक: अर्चना पैन्यूली, प्रकाशन: प्रभात प्रकाशन, मूल्य: रु. 400/-

कहानी के पात्र भले ही काल्पनिक हों लेकिन ये वास्तविक जीवन की कहानियाँ हैं अंतर्द्वंद्वकी, आधुनिक जगत् की बीमारियाँ शारीरिक और मानसिक दोनों -पति-पत्नी के आपसी खिंचाव, सेपेरशन और सेपेरशन को झेलते हुए बच्चों की मनोदशा का बखूबी चित्रण हुआ है। स्त्री विमर्श के कई पहलुओं को चित्रित करता इन कहानियों में समाज के हर तबके की स्त्रियों के जीवन संघर्ष की कथाएँ हैं, उनके छोटे- बड़े सुख और नई परिस्थितियों में सामंजस्य बैठाने का उनका अपना मौलिक हुनर उनकी पटकथा से साफ़ झलकता दिखाई देता है। स्वयं कहानीकार का जीवन महानगरों के बाद विदेशी भूमि में अधिक बीता है अत: स्वाभाविक है इस दौरान उनके सम्पर्क में जितनी स्त्रियाँ अथवा उनके परिवार आए होंगे, उन सबकी कहानी इस संग्रह में प्रतिबिम्बित हुई हैं।

मेरे हिसाब से इस संग्रह की सबसे मर्मस्पर्शी कहानी हाईवे E -47 है। मज़े की बात है कि इस कहानी को पढ़ते हुए कतई नहीं लगता कि इसका अंत इतना चौंकाने वाला होगा। इस तरह चौंकाने वाला कहानी का समापन मुझे चेखब की कहानियों में अधिक दिखाई दिया। वेश्यावृति पर आधारित कहानी 'गॉडमदर' पढ़ कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। महानगरी मुम्बई में सेक्स का चौंका देने वाला रेड लाइट एरिया -कमाठीपुरा में सेक्स वर्करों की बदतर ज़िंदगी का सजीव वर्णन है तो विकसित यूरोपीय देशों में सेक्स वर्करों को सरकार द्वारा मिली सहूलियतों का भी ज़िक्र है। मगर प्रधानाचार्य मिसेज़ फर्नाडीस का एक वेश्या की दो पुत्रियों को रेड लाइट एरिया से बाहर निकाल शिक्षित करके एक नया जीवन प्रदान करना सुखद अहसास से भर देता है। 'मैं खुल कर कहूँगी कि मैं गे हूँ' में समलैंगिकों के जीवन व समस्याओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। हिन्दी साहित्य में गे-रिलेशनशिप पर बहुत कम लिखा गया है। अब आप समझ जाइए कि अर्चना पैन्यूली ने कितनी परिपक्वता हासिल कर ली है बतौर कहानीकार के। एक और विशेषता है इनकी लेखन शैली की वह यह कि जैसे कोई अपने व्यक्तिगत जीवन में संवाद करता है हैं वैसा ही प्रवाह उनकी कहानियों में होता है - वह सोचकर जैसे बनावटी शब्द नहीं उँड़ेलती हैं जैसे मुँह में आया वैसे ही लिख देती हैं -यही तत्व मेरे ख़याल से इन कहानियों को जीवंत बनाता है।

वैसे हर पाठक की अपनी अपनी प्रतिक्रिया हो सकती है जो कहानी पढ़कर ही व्यक्त की जा सकती है -मैंने भी वही किया जैसे पढ़कर महसूस हुआ अपनी प्रतिक्रिया दे रहा हूँ।

❐❐❐

संपर्क: ऋषिका पैराडाइज़, जगदीश नगर, ज़ेड फर्स्ट मेन क्रास, बैंगलूरू, -560075, ईमेल: gpbahuguna84@gmail.com
मोबाइल : + 91 9008151078

यात्रा संस्मरण

पधारो म्हारे देस .....

राजश्री मिश्रा

नवम्बर 15 की एक शाम मेहदी हसन साहब की मखमली आवाज़ में ''पधारो म्हारे देस .....'' को सुनते हुए बेसाख़्ता मेरे मुँह से निकल पड़ा ''सुनो! इस बार राजस्थान चलते हैं ...'' शायद वो दिन का वही समय था जब दिन में एक बार आपकी इच्छा क़बूल होती है, प्रतिउत्तर में ''ठीक है जनवरी में चलते हैं 15 दिन के लिए, रूट प्लान और इटनरी तैयार करो ...'' सुनते ही, लैपटॉप हाथ में ही था मैं तुरंत काम में जुट गई। राजस्थान के नाम में ही मेरे लिए हमेशा से रोमांच रहा है, क़िले, महल, हवेलियाँ, बावड़ियाँ झरोखे मुझे आकर्षित करते हैं, हालाँकि मैं साइंस की छात्रा रही हूँ पर इतिहास मुझे अपनी ओर खींचता है इसलिए साहित्य में भी ज़्यादातर इतिहास आधारित उपन्यास एवं कहानियाँ रुचती हैं। पढ़ते हुए लेखक की कलम के माध्यम से जाने कितनी बार मैं उन वर्णित क़िलों, महलों, की सैर कर आई हूँ लेकिन वास्तविक तौर पर जाने और उन कहानियों को महसूस करने की इच्छा सदैव मन के किसी कोने में कुलबुलाती रहती है। सो नेट पर खँगाल कर 15 दिनों की यात्रा का खाका तैयार किया और जनवरी के दूसरे सप्ताह सपरिवार निकल पड़े राजस्थान की ख़ाक छानने। वैसे ये ख़ाक छानना सिर्फ मुहावरा ही था इस यात्रा के लिए क्योंकि सारा प्लान ज़रा शाही अंदाज़ में तैयार किया गया था, शाही ठाठबाट में कोई कसर ना रहे इस बात का पूरा ध्यान रखते हुए सिर्फ हेरिटेज और ग्रैंड हेरिटेज होटल्स का ही चुनाव ठहरने के लिए किया गया था। रायपुर -डेल्ही-जयपुर का हवाई सफ़र और फिर जयपुर से टैक्सी से अज़मेर -पुष्कर -उदयपुर- माउंट आबू -जोधपुर -जैसलमेर -जयपुर -आगरा -फतेहपुर सीकरी -डेल्हीइस सर्किट में सफ़र के लिए जयपुर से निकल पड़े।

यात्राएँ सुखद अनुभव और स्मृति तो देती ही हैं साथ ही साथ ये हमारी सोच-समझ को विकसित करती हैं, नज़रिए में बदलाव लती हैं, विचारों को विस्तार देती हैं। यात्राओं का एक और आयाम नएपन का एहसास और विस्मय आजकल इंटरनेट ने छीन लिया है या कहिये की हमने स्वयं खो दिया है। अपनी यात्राओं को ज़्यादा व्यवस्थित और आरामदायक बनाने के चक्कर में कहीं जाने से पहले हम उस जगह के बारे में इतना अधिक अनुसन्धान करते हैं कि बाज़ दफा तो स्थानीय लोगों की बनिस्बत ज़्यादा जानकर हो जाते हैं और किसी नई जगह पहुँच कर उसके नएपन के एहसास को महसूस करने से वंचित रह जाते हैं। वहाँ पहुँच कर कुछ भी हमें चौंकता नहीं बल्कि हमारा दृष्टिकोण तुलनात्मक होता है और उस स्थान के सौन्दर्य को निहारने, उसकी अनुभूति करने से इतर हम नेट पर जैसा देखा था वैसा ही है या नहीं, तलाशते रहते हैं। इस सफ़र में मेरी भी स्थिति कमोबेश यही थी लेकिन एक पड़ाव ऐसा था जिसने मुझे विस्मित कर दिया, कला का ऐसा अद्भुत नमूना जिसके मानवीय प्रयास होने पर सहज यकीन करना मुश्किल था।

अपनी यात्रा के पाँचवें दिन हम उदयपुर से माउन्ट आबू पहुँचे। उदयपुर से माउंट आबू का लगभग 164 किलोमीटर तक सुन्दर पहाड़ी चढ़ाई वाला रास्ता आसपास के सुन्दर नज़ारे देखते-देखते कब तय हो गया पता ही नहीं चला। माउंट आबू अरावली रेंज की एक छोटी-सी पहाड़ी पर बसा राजस्थान का एक मात्र हिल स्टेशन है जिसकी समुद्र ऊँचाई लगभग 1220 मीटर है, मात्र 198 वर्ग किलोमीटर के इस छोटे से हिल स्टेशन में जब हम प्रवेश कर रहे थे तो सूर्यदेव अस्ताचल को गमन कर रहे थे। शहर में प्रवेश करते ही मुख्य चौराहा दिखाई दे जाता है जिसकी बाईं ओर बस स्टैंड, नक्की लेक, बाज़ार और दाहिनी ओर की रोड पर थोड़ी चढ़ाई पर हमारा होटल वेल्कम हेरिटेज कनॉट हाउस था; जो कि एक ब्रिटिश स्टाइल

आने का प्लान हुआ और हम चारों जने निकल पड़े। मौसम में खुशनुमा ठंडक थी सड़क पर शोर ज़्यादा था फिर भी अच्छा लग रहा था। नक्की लेक रोड एक छोटे से मॉल रोड की तरह तरह-तरह के छोटे बड़े रेस्टोरेंट, खिलौने, हेंडीक्राफ्ट, चाँदी के ज़ेवरों, कपड़ों और फैंसी आइटम्स की छोटी-बड़ी दुकानों से सजी हुई थी। रोड के आख़िरी छोर पर नक्की लेक थी लेकिन अँधेरे की वजह से लेक वाले छोर पर चहल पहल कम थी। उस धुँधलके में मैंने लेक के ऊपर की ओर टॉड रॉक तलाश कर बच्चों को दिखाया, तो उन्होंने उसे टॉड के शेप का मानने से साफ इंकार कर दिया और बेटा इस बात पर एतराज़ जताने लगा कि ये क्या हर टूरिस्ट स्पॉट में कुछ भी-कुछ स्पॉट बना देते है और ये रॉक वाला स्पॉट तो लगभग हर हिल स्टेशन में होता है। कुछ हद तक वो सही भी था उसका अनमनापन दूर करने जब मैंने कहा पता है? एक और इंटरेस्टिंग फैक्ट है, ये नक्की लेक नाख़ून से खोद कर बनाई गई है, तो जिस तरीके से उसने मुँह बिचकाया और बिटिया और पति देव मुझे देखकर मुस्कुराए, मुझे लगा हमें अपने पर्यटन स्थलों के बारे में पर्यटकों को ज़्यादा तथ्यात्मक, विश्वसनीय और सटीक जानकारी उपलब्ध करवाना चाहिए ताकि पर्यटकों की उसमे रुचि बनी रहे। मन ही मन इस बात पर शुक्र भी मनाया कि अच्छा हुआ जो इस लेक के विषय में पौराणिक कहानी इन्हें नहीं बतलाई, मेरा भी क्या दोष जो नेट पर पढ़ा है वही तो बता रही थी। बच्चों ने खिलौनों की दुकानों की ओर रुख किया तो मै चाँदी और ब्लैक मेटल के ज़ेवर देखने लगी बहुत ही सुन्दर गढ़ाई के ज़ेवर थे दाम भी वाज़िब था लेकिन ये सोचकर कि आगे जोधपुर-जयपुर में शायद ज़्यादा बेहतर मिलें मैंने कुछ ख़रीदा नहीं, जिसका अब तक अफ़सोस है, क्योंकि आगे कहीं वैसे ज़ेवर देखने भी नहीं मिले। यूँ ही तफरीह करते हुए राजस्थानी प्रिंट की एक लॉन्ग स्कर्ट देख खरीदने का मन बन गया। कोई खास स्कर्ट नहीं थी राजस्थानी हेंडलूम प्रिंट की लाल रंग की हाथियों के मोटिफ वाली साधारण सी स्कर्ट पर उसे देख मेरे ज़हन में यह बात आई कि मैंने कोई 28-29 सालों से स्कर्ट नहीं पहनी है, मना किसी ने नहीं किया स्कर्ट पहनने लेकिन हमारे समय में हाई स्कूल के बाद लड़कियाँ स्कर्ट पहनना बंद कर देतीं थीं सो शायद वही बात अवचेतन में गहरे कहीं रही, तो अब से पहले कभी ख़याल ही नहीं आया। स्कर्ट खरीद ली गई शायद अवगुंठन से मुक्ति का एक प्रयास में। हलकी बूँदाबाँदी शुरू हो गई थी मौसम और लुभावना हो गया था अर्बुदा रेस्टोरेंट से, जिसका नाम आबू की अर्बुदा देवी के नाम पर है, आइसक्रीम लेकर खाते हुए, हलकी फुहार में भीगते- भीगते हम नक्की लेक रोड से होटल रवाना हुए। रात का भोजन कर अगली सुबह जल्दी उठकर तैयार होने की हिदायत के साथ बिस्तर में पहुँचे दिनभर की थकान और तेज ठण्ड की वजह से मिनटों में नीद आ गई।

अगली सुबह तैयार होकर सबसे पहले सुबह लगभग 10 बजे दिलवाड़ा के जैन मंदिर पहुँचे, मैंने अपनी कल शाम नक्की लेक से खरीदी लॉन्ग स्कर्ट पहन रखी थी, मंदिर की सुन्दरता और भव्यता से मैं पहले से वाकिफ़ थी सो मुझमें दुगना उत्साह था। मंदिर के आसपास की बंद दुकानों को देख कर पतिदेव ने आशंका जताई ''शायद हम कुछ ज़्यादा ही जल्दी पहुँच गए है''। मंदिर के टिकट काउंटर पर पता चला कि ये समय ट्रस्ट के सदस्यों के पूजन का समय है, पर्यटकों के लिए मंदिर में प्रवेश 12:00 बजे के बाद प्रारंभ होता है। अब हमारे पास समय था तो बह्मकुमारी संस्थान जाना तय हुआ। ब्रह्मकुमारी संस्थान में मेरे पति के मित्र के भाई ब्रह्मकुमार है वे वहाँ प्रबंधन में बड़े पदाधिकारी है, आने से पहले हमने अपनी यात्रा की सूचना उन्हें दी थी एवं उनका विशेष आग्रह था कि हम ब्रह्मकुमारी संस्थान ज़रूर आएँ वैसे भी पतिदेव आज के दिन की शुरूआत उनके निमंत्रण से ही करना चाहते थे तो उन्हीं के मन से आज दिन शुरू हो रहा है।

ब्रह्मकुमारी संस्थान जो कि प्रजापति ब्रह्मकुमारी ईश्वरीय विश्वविद्यालय के नाम

में बना काटेज, ऊँचे नीचे पत्थरों पर प्राकृतिक लैंड स्केपिंग से सुसज्जित सुंदर सा, जो कभी मेवाड़ के प्रधानमंत्री की मिलकियत था, फिर उदयपुर राजपरिवार के हाथों होता हुआ अब वेलकम होटल ग्रुप की देखरेख में है, का दो बेड रूम का सुइट हमारा आशियाना था, अगले दो दिनों के लिए। दोनों ही बेड रूम की साजसज्जा सुरुचिपूर्ण थी पुरानी ईमारत को आधुनिक सुख सुविधाओं से आरामदेह बनाने का प्रयास किया गया था। ब्रिटिश पैन्टर्स की आयल पंटिंग्स ने इंटीरियर को और अधिक आकर्षक बना रखा था। स्वयं पेंटर होने के कारण मेरे लिए ये पेंटिंग्स बोनस की तरह थीं। उदयपुर की तुलना में माउंट आबू में काफी ठण्ड थी पहुँचते ही बैग खोलकर बच्चों को गर्म कपड़े पहनाने पड़े। दिन भर के सफ़र की थकन थी तो बच्चों ने कहीं भी नहीं जाने से इनकार करते हुए, बस, खाना खा कर सोएँगे एलान कर दिया। मेरा 12 वर्षीय बेटा ये जानकर बहुत खुश था कि इस वक्त वह अपनी जियोग्राफी के कोर्स वाली अरावली रेंज पर है। कहीं पहुँच कर होटल में समय बिताने में मुझे बहुत कोफ़्त होती है, लेकिन बच्चों से जग हारा सो मन मार कर अपने और उनके फ्रेश होने का इंतज़ाम करने लगी। नहा-धोकर नाश्ता करने के बाद भी जब घड़ी साढ़े छह ही बजा रही थी, ख़राब मौसम की वजह से टी वी पर प्रॉपर सिग्नल नहीं आने से बच्चों तक मेरे दिमाग के सिग्नल पहुँचने लगे, उनका मन बदला और चलो आस-पास कहीं चलते हैं का प्रस्ताव आया। ये ख़ुशी की बात थी कि छोटी जगह होने से यहाँ सभी कुछ पास-पास ही था, सो नक्की लेक तक टहल कर

से प्रख्यात है और देश-विदेश में फैले ब्रह्मकुमारी संस्थानों का मुख्यालय है, थोड़ी ऊँचाई पर बना एक विशाल परिसर है जिसमें ध्यान केंद्र, हॉस्टल, पाकशाला, ऑफिस और भी कई बड़ी इमारतें हैं। हम जब ब्रह्मकुमारी संस्थान पहुँचे तो हमारे परिचित ब्रह्मकुमार जी पार्किंग स्थल में ही हमारी अगवानी के लिए अपने सहयोगियों के साथ उपस्थित थे। मेरा और बच्चों का उनसे मिलने का प्रथम अवसर था अभिवादन एवं औपचारिक परिचय के बाद वे हमें संस्थान भ्रमण के लिए ले गए। रस्ते में वे हमें ब्रह्मकुमारी संगठन, राजयोग और देश-विदेश में अनुयायियों के विषय में जानकारी देते रहे। मुख्य इमारत में 2-3 ऑडिटोरियम थे जिनमे राजयोग, मैडिटेशन और जीवन से मृत्यु की ओर मनुष्य की यात्रा अदि विषयों पर फ़िल्में दिखाई जातीं हैं, बाकायदा निश्चित समय पर शो होते है और देश के विभिन्न प्रान्तों से आए अनुयाई लाइन में लगकर, इंतज़ार करके ये शो देखते हैं, संयोग से हमें छत्तीसगढ़ के अनुयाइयों का एक समूह भी मिला, दूसरा प्रमुख आकर्षण यहाँ महाभारत, रामायण, जीवन के विभिन्न चरणों और स्वर्ग-नरक की अवधारणाओं पर आधारित झाँकियाँ जिनकी व्याख्या ब्रह्मकुमारियाँ अपनी एक विशिष्ट शैली में करतीं हैं। हमने संस्थान में ये सब देखते और जानकारी हासिल करते हुए लगभग दो घंटे बिताए। पतिदेव अपने पूर्वपरिचित से मिलकर एवं उनकी अध्यात्मिक और कुछ हद तक व्यवसायिक उन्नति देखकर खुश थे। बच्चों को कुछ देर तक झाँकियाँ देखकर मज़ा आया लेकिन झाँकियों की अधिक संख्या और पूरा विवरण सुने बगैर आगे न बढ़ने देने की बंदिश की वजह से उकताने लगे। मुझे यह संस्थान अतुल नैसर्गिकता के बीच घोर कृत्रिमता आभास दे रहा था, आध्यात्मिकता का आभास मुझे नहीं हुआ। हमारे मेज़बान ने हमारा दिनभर का कार्यक्रम जानने के बाद ॐ पीस पार्क जाने का अनुरोध किया तो हामी भरते हुए, मेजबान ब्रह्मकुमार जी से विदा ले हम दिलवाड़ा मंदिर रवाना हुए।

मंदिर पहुँच टिकिट काउंटर से मंदिर दर्शन के लिए टिकट लेकर कैमरा, मोबाइल, चमड़े के बेल्ट व पर्स इत्यादि प्रतिबंधित वस्तुएँ काउंटर में जमा करवाकर हमने मंदिर में प्रवेश किया। हम गाइड साथ ले जाना चाहते थे लेकिन ज्ञात हुआ कि गाइड की सुविधा उपलब्ध नहीं है। मंदिर के प्रवेश द्वार पर आंग्ल भाषा में मंदिर के विषय में सचित्र फ़ोल्डर्स, हैंडबुक आदि विक्रय करने वाले व्यक्ति ने अनुरोध किया कि ये साथ लेते जाए अन्यथा कुछ समझ नहीं पाएँगे सो उसकी सलाह पर हमने एक हैंडबुक खरीद लिया। बाहर से साधारण और अनगढ़ सा दिखने वाला दिलवाड़ा मंदिर अन्दर से वास्तव में पाँच प्रमुख और कुछ छोटे मंदिरों का समूह है सम्पूर्ण मंदिर परिसर पहाड़ियों से घिरा हुआ है। हैंडबुक के आधार पर हमने मंदिर परिसर के सबसे पुराने और बड़े मंदिर "विमल वासाही मंदिर" में प्रवेश किया मंदिर का प्रवेश द्वार सफ़ेद संगमरमर से बना अलंकृत किन्तु सादगी पूर्ण था किंतु द्वार से अन्दर प्रवेश करते ही आँखें आश्चर्य से फ़ैल गईं, आँखों के सामने सफ़ेद संगमरमर से बना नक़्क़ाशीदार विशाल एवं भव्य मंडप जिसकी छत, स्तम्भ पर हर ओर महीन नक़्क़ाशी से विभिन्न आकृतियाँ बनीं थीं। 30-40 पर्यटक गुम्बद के चारों ओर बने गलियारे में थे लेकिन अद्भुत शांति पसरी हुई थी या विस्मय के कारण मेरी अन्य इन्द्रियाँ शून्य हो गईं थी कह नहीं सकती। जहाँ भी नज़र जाती, ऐसा कोई कोना नहीं था जो कलात्मकता से परिपूर्ण नहीं था। हम एक ही स्थान में खड़े हो आश्चर्य से इधर उधर देख रहे थे और एक दूसरे को देखने के लिए प्रेरित कर रहे थे। बच्चे तीर्थंकरों के विषय में जानना चाहते थे, हमारे मन में भी कई तरह के सवाल थे लेकिन जवाब देने के लिए वहाँ कोई नहीं था। मंदिर में ज़्यादातर पर्यटक बस जो कुछ था, उसे देख रहे थे और आपस में ही एक दुसरे को अनुमान से कुछ जानकारियाँ दे रहे थे। तभी हमरी नज़र एक समूह पर पड़ी जिनके साथ एक गाइड था जो विस्तार से उन्हें एक-एक कलाकृति के

विषय में बता रहा था, पूछने पर पता चला की वह किसी कॉर्पोरेट ग्रुप के अधिकारियों का समूह है, और कंपनी के द्वारा उन्हें गाइड उपलब्ध करवाया गया है। हमारे अनुरोध पर उन्होंने हमें अपने ग्रुप में शामिल कर लिया। मंदिर की संरचना और उसके विषय में अन्य प्रचलित कहानियों से इतर यदि बात करें तो सम्पूर्ण मंदिर अत्यंत भव्य एवं कलात्मक सौन्दर्य से परिपूर्ण है। यदि कोई खोजे भी तो नख बराबर भी जगह नहीं मिलेगी जहाँ कलात्मकता ना हो। मुझे तो यह बात ही आश्चर्य चकित कर रही थी कि सन 1031 में वास्तुकार ने बग़ैर किसी मशीन की सहायता के कैसे इस तरह की महीन नक़्क़ाशीदार संरचना के निर्माण का डिज़ाइन तैयार किया होगा, धन्य है उसकी कल्पना शक्ति जो वह यह परिकल्पना कर सका। जितना बारीक़ काम किया गया है उसे देख कर इस मंदिर को पूर्ण करने में लगा 14 वर्षों का समय भी कम ही प्रतीत होता है। मेरी समझ से इस मंदिर के निर्माण लगे 1500 शिल्पकारों और 1200 श्रमिकों में हर कोई अपनी विधा का मास्टर रहा होगा क्योंकि विशिष्ट निपुणता के बग़ैर इतनी सफाई और सटीकता से इतना बेहतरीन काम करना संभव नहीं है। छेनी हथौड़ी से पत्थर पर उकेरी गई कलियों, पत्तियों और फूलों की फिनिशिंग कपड़े पर सुई धागे से की गई कशीदाकारी को अपनी बारीकी में मात करती है। सधे सुघड़ हाथों से जो काम उस समय किया गया है उसे आज के डिजिटल युग में भी किया जाना असंभव लगता है, सटीक ज्यामितीय आकृतियाँ एवं उनका कलात्मक संयोजन और सबसे बड़ी बात भिन्नता इतनी बड़ी संरचना में कोई भी एक

डिजाइन दूसरे से नहीं मिलता लेकिन आपस में कुछ भी बेमेल नहीं लगता। गलियारे की छत में बेलबूटों और ज्यामितीय संरचनाओं के साथ 57 देवियों की मूर्तियाँ बनीं हैं जो छत से ज़मीन की दिशा में मुख किए हुए हैं। कोई दो मत नहीं कि ये सभी सुन्दर, सुगठित, सुसज्जित हैं किन्तु जो विस्मित करने वाली बात है वो है इनकी फिनिशिंग कि ज़मीन से बग़ैर किसी विशेष प्रयास के इन मूर्तियों के नाख़ून की धारियाँ सपष्ट दिखाई देतीं है, नाख़ून उतने ही पतले जैसे वास्तव में होते हैं। गाइड महोदय का कहना था कि इतनी निपुण और सूक्ष्म कलात्मकता का कारण यह है कि इन शिल्पकारों को पारिश्रमिक दिन या महीने के आधार पर नहीं बल्कि उनके द्वारा पत्थर को घिसने से जितना पाउडर निकलता था उसके वजन के बराबर स्वर्ण के रूप में किया जाता था इसलिए शिल्पकार अधिक से अधिक घिसाई करते थे, हो सकता है यह सत्य हो लेकिन हुनर न हो तो घिसाई व्यर्थ ही होगी। संगमरमर जैसे नरम पत्थर पर काम करना आसान नहीं रहा होगा जाने इस विशाल निर्माण में कितनी ही बार पूर्ण होने के ठीक पहले एक गलत चोट से पूरा शिल्प बिखर गया होगा और फिर से नए सिरे से पूरा काम शुरू करना पड़ा होगा क्योंकि यहाँ किसी एक संरचना में कही कोई जोड़ नहीं है, पूरी एक ही पत्थर पर उकेरी गईं हैं। क्या घिसाई के पाउडर के वज़न के बराबर सोना पारिश्रमिक के तौर पर देने वाला गलती पर कोई कठोर सज़ा भी देता रहा होगा ? यूँ ही एक ख़याल मेरे दिमाग में आया, मैं कुछ पूछती इससे पहले ही गाइड ने सिलसिलेवार विवरण करना प्रारंभ कर दिया। विमल वसाही मंदिर की परिकल्पना ''कीर्तिधर'' नामक वास्तुकार द्वारा की गई थी 140 फीट लम्बे और 90 फीट चौड़े मंदिर के निर्माण के लिए आवश्यक पत्थर 14 मील दूर अरासुरी पर्वत से लाए गए। मानवीय कल्पना से परे अद्भुत सौन्दर्य से परिपूर्ण इस मंदिर में गूढ़ मंडप, नवचौकी, रंग मंडप और गलियारा है। गलियारे में 52 छोटे-छोटे कक्ष हैं, प्रत्येक कक्ष में जैन तीर्थंकरों की मूर्तियाँ स्थापित हैं। प्रत्येक कक्ष के दोनों ओर अलंकृत स्तम्भ एवं ऊपरी दीवार तथा गलियारे की छत पर महीन

पच्चीकारी कर कलाकृतियाँ उकेरी गईं है। प्रत्येक कक्ष पर एक नंबर एवं उसमें स्थापित प्रतिमा का नाम लिखा गया है। अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमण के समय इनमें से कुछ कक्षों को आक्रमणकारियों ने नष्ट कर दिया था जिनका विमल शाह के वंशजों द्वारा पुनर्निर्माण करवाया गया। गलियारे की छत एवं कक्षों के पैनल पर जैन धर्म के विभिन शुभ प्रतीक चिह्न, तीर्थंकरों के जीवन से संबंधित घटनाओं, हाथी, कमल, हंस, वाद्य यंत्र लिए देवियाँ, नृत्य मुद्रा में स्त्रियों की मूर्तियाँ आदि को शिल्प के माध्यम से अंकित किया गया है। जैन धर्म के साथ-साथ हिन्दू धर्म के देवी देवताओं और उनके जीवन से सम्बंधित पैनल एवं मूर्तियों ने सहज ही ध्यान आकर्षित किया। श्रीकृष्ण एवं भगवान् नेमिनाथ समकालीन माने जाते हैं, श्रीकृष्ण द्वारा कालिया मर्दन, बलराम के साथ खेलते हुए, होली का दृश्य भी अत्यंत कलात्मक ढंग से उकेरा गया है। पंचकन्या, सोलह भुजाओं से युक्त शीतला माता, सरस्वती देवी, पद्मावती, अष्टकमल में स्थापित लक्ष्मी, गज देवी, इंद्रा, अग्नि, यम, कुबेर, वरुण आदि देव कितना कुछ उन महान शिल्पकारों से शायद ही कुछ छूट पाया होगा जो उनके शिल्प में नहीं ढल सका। मंदिर के प्रवेश द्वार के सामने रंग मंडप की विशाल छत, इस मंदिर की सबसे विशिष्ट संरचना इसकी यह गोल गुम्बदीय छत है जो मानवीय कल्पना शक्ति और कल्पना को मूर्त स्वरुप प्रदान करने के लिए किए गए प्रयास की पराकाष्ठ का अद्भुत नमूना है। गुम्बद की छत में बाहर से अन्दर की ओर 11 वलय बने हुए हैं, प्रत्येक वलय में अत्यंत महीन पच्चीकारी करके अलग अलग घेरे में हाथी, घोड़े, हंस, वाद्य यंत्रों के साथ नर्तक दल, शोभायात्रा, की मूर्तियाँ उकेरी गईं हैं। इन वलयों से उभरे हुए प्रस्तर पर अपने अपने प्रतीक चिह्न धारण किए सोलह विद्या देवियों की मूर्तियाँ हैं और गुम्बद के बीचों बीच में उलटे पेंडेंट की तरह लटकती हुई एक के अन्दर एक बड़े से छोटी होती हुई कमल के फूल की संरचना है, जो छत से धरती की ओर लटकती एक छोटे बिंदु रूपी कला के पुष्प में समाप्त होती है। देवियों और कमल के पुष्प के रूपकों के माध्यम से यह समझाया गया है कि ज्ञान के सभी स्वरूपों को आत्मसात करके ही मनुष्य का कमल रूपी अंतर्मन विकसित होता है, अर्थात आत्मविकास का मूल आधार ज्ञान है। यह गुम्बद 12 स्तंभों और तोरण पर पर आधारित है यह कहने की आवश्यकता नहीं की ये सभी स्तम्भ और तोरण बेजोड़ शिल्प के नमूने हैं। प्रत्येक स्तंभ के आधार पर देवियों की मूर्तियाँ बनीं हैं जो अपने हाथों में वाद्य यंत्र लिए हुए हैं कमाल ये कि इन मूर्तियों की पीठ स्तम्भ से जुड़ी हुई नहीं है और पूरा स्तम्भ अत्यंत महीन अलंकरण से सुसज्जित है एवं एक प्रस्तर खंड का बना हुआ है। रंग मंडप के बाद नवचौकी है यह स्थान आरती के लिए प्रयोग में लाया जाता है जो की 9 आयताकार छतों का समूह है प्रत्येक छत स्तभों पर आधारित है स्तम्भ, तोरण और छतों पर की गई शिल्पकारी अनुपम है। इससे आगे गूढ़ मंडप है जो कि एक सादगी पूर्ण संरचना है, इसके द्वार पर सुन्दर पच्चीकारी की गई है। गर्भ गृह में स्थापित भगवान् आदिनाथ की मूर्ति भी अत्यंत प्रभावशाली है। मूर्ति की आँखें हीरे से बनी हुई हैं और गले में रत्न माला है। गूढ़ मंडप में दोनों किनारों पर भगवान् पार्श्वनाथ की प्रतिमा ध्यान मुद्रा में स्थापित है। कैसे जादूगर रहें होंगे वो शिल्पकार ? जिन्होंने इन निर्जीव पाषाण खण्डों को इतनी कुशलता से तराशा कि सदियों बाद भी उनमें जीवन्तता का आभास होता है, ऐसा शिल्प सौन्दर्य रचने वाले खुद कैसे रहे होंगे ? ये बातें सोचते हुए मुझे, गाइड द्वारा बताई जा रही बातें कि कैसे विमल शाह ने परमार नरेश से सम्पूर्ण भू खंड को प्राप्त करने के लिए चाँदी की ईंटों से ढँक कर ज़मीन का मूल्य रुपये 56 लाख चुकाया और यह भू खंड अपनी कुलदेवी अम्बा जी का आदेश पूरा करने के लिए बनवाया, नेपथ्य से आती हुई लग रहीं थीं। उन अनाम वास्तुकारों और शिल्पकारों की सराहना का काश ! मुझमें

सामर्थ्य होता .. इसी मंदिर में एक हस्तिशाला भी है जहाँ संगमरमर से बनी अत्यंत सुन्दर और चमकदार हाथियों की मूर्तियाँ हैं जो कहा जाता है विमल शाह ने अपने परिवार के लोगों की याद में बनवाईं थी। सादगी, सौन्दर्य और भव्यता का एसा कलात्मक मेल शायद ही विश्व में अन्यत्र कहीं हो।

विमल वासाही मंदिर के सौन्दर्य से अभिभूत जब हम लूना वासाही मंदिर की ओर बढ़ रहे थे तो गाइड ने इतने सुन्दर और भव्य मंदिरों की बाहर से साधारण सी बनावट के रहस्य से पर्दा उठाते हुए बताया कि आक्रमणकारियों और लुटेरों से सुरक्षित रखने के उद्देश्य से इन्हें बाहर से सुसज्जित नहीं किया गया, यही कारण है कि ये मंदिर अब तक अपने मूल रूप में सुरक्षित हैं। कुछ हिस्सा है जिसका पुनर्निर्माण कराया गया है लेकिन अधिकांश वास्तविक रूप में संरक्षित है।

''लूना वासाही मंदिर'' दूसरा प्रमुख मंदिर है ये भगवान् नेमिनाथ जी को समर्पित है यहाँ भगवन नेमिनाथ की विशाल काले पत्थर की मूर्ति स्थापित है। यह मंदिर भी संगमरमर से बना बेजोड़ शिल्प का अद्भुत नमूना है। इस मंदिर का निर्माण विमल वसाही से 225 सालों बाद हुआ। यह मंदिर विमल वसाही से छोटा है, इसकी मूल संरचना और आर्किटेकचर विमलवसाही से मिलता जुलता है किन्तु इसकी शिल्पकारी एवं पच्चीकारी तुलनात्मक रूप से और अधिक उन्नत एवं परिष्कृत है। इस मंदिर में भी गलियारे में 52 छोटे कक्ष बने हैं जिनमें तीर्थंकरों और देवियों की प्रतिमाएँ स्थापित हैं। गलियारे की छत एवं स्तभ अतंत सुरुचिपूर्ण तरीके से जैन एवं हिन्दू धर्म के प्रतीक चिह्नों, जीवनी विवरण तथा श्री कृष्ण के जीवन आख्यानों के चित्रण से सुसज्जित हैं। मंदिर का रंग मंडप अत्यंत सुन्दर नक़्क़ाशी से बना है। मंडप के गुम्बद को आधार प्रदान करने वाले स्तंभों पर सोलह देवियों की मूर्तियाँ हैं। गुम्बद के वलयों में बैठी मुद्रा में 72 तीर्थंकरों की प्रतिमा उकेरी गई हैं एवं इसके ठीक नीचे जैन सन्यासियों की 360 प्रतिमाएँ बनी हैं। छेनी हथौड़ी से अत्यंत सूक्ष्म नमूनों की गढ़न शिल्पकारों की कार्यकुशलता एवं दक्षता का प्रत्यक्ष प्रमाण

है। सबसे आश्चर्यजनक गुम्बद के बीचों बीच से उलटी लटकती संगमरमर से बनी क्रिस्टल के झूमर नुमा संरचना है, जिसमें की गई अति महीन पच्चीकारी देख इसके पत्थर से बने होने पर सहज विश्वास करना मुश्किल है। इतने भारी पत्थर की इस संरचना को शिल्पकारी और पच्चीकारी द्वारा अलंकरण के बाद यदि ऊपर लगाया गया होगा, तो यह दुरूह कार्य कैसे संपन्न हुआ होगा और यदि पहले पत्थर ऊपर स्थापित कर उस पर नक़्क़ाशी की गई होगी तो शिल्पकारों ने यह कार्य कैसे संभव बनाया होगा ? यह रहस्य ही है। इस मंदिर में नवचौकी थोड़ी ऊँचाई पर स्थित है जिसपर किए गए बारीक़ काम को नज़रंदाज़ करना मुश्किल है। गर्भ गृह में भगवान् नेमिनाथ की काले पत्थर से बनी मूर्ति स्थापित है। मंदिर में दो गोखड़े स्थापित हैं जिन्हें देवरानी जेठानी के गोखड़े कहा जाता है। गाइड के बताए अनुसार इस मंदिर के निर्माण कर्ता तेजपाल एवं वसुपाल की पत्नियों ने ये गोखड़े बनवाए हैं। दोनों देवरानी-जेठानी में दूसरे से बेहतर गोखड़े बनवाने की होड़ थी इसलिए कई बार इन गोखड़ों को तोड़ा गया। बाद में कारीगरों ने बिलकुल एक जैसे दोनों को बना दिया जिनमें अंतर करना मुश्किल था। यह मंदिर कला, स्थापत्य, आध्यात्मिकता एवं संसारिकता के समायोजन का उत्कृष्ट उदहारण है।

परिसर में पित्तालहार मंदिर है जो स्थापत्य की दृष्टि से इन दोनों मंदिरों जितना सुन्दर नहीं है किन्तु इस मंदिर में भगवान् आदिनाथ की 108 मन की पञ्च धातु की विशाल प्रतिमा स्थापित है जो इसे विशिष्ट बनती है।

एक अन्य प्रमुख मंदिर भगवन पार्श्वनाथ जी का मंदिर है जो तीन मंज़िला मंदिर है। दिलवाड़ा परिसर का यह सबे ऊँचा मंदिर है। यह मंदिर सैंडस्टोन से निर्मित है।यह यक्षिणी, शालभंजिका, विद्यादेवी अदि की मूर्तियों से सुसज्जित है।

दिलवाडा मंदिर परिसर का सबसे छोटा मंदिर भगवन महावीर को समर्पित है, यह एक साधारण संरचना है इसकी दीवारों पर सिरोही के कलाकारों द्वारा चित्रकारी की गई है।

परिसर में कुछ छोटे-छोटे मंदिर भी हैं किन्तु विमल वासाही एवं लूना वासाही मंदिरों की सौन्दर्यानुभूति के बाद सब फीके लग रहे थे। फ़ोटोग्राफी की अनुमति नहीं होने से केवल मन मस्तिष्क में ही इन्हें सँजोते हुए हम मंदिर से बाहर निकले। ज़्यादातर पर्यटक फ़ोटोग्राफी नहीं किए जाने देने से नाराज़ होते हैं। थोड़ा अफ़सोस मुझे भी हुआ लेकिन इस बात की संतुष्टि थी कि फ़ोटोग्राफी की अनुमति नहीं होने से हम ने अपनी समस्त इन्द्रियों से इस कलात्मक सौन्दर्य की अनुभूति की, अन्यथा आजकल प्रत्यक्ष को भी कैमरे की नज़र से देखा जाता है बाद में देखने के लिए सहजने के चक्कर में लोग जो सामने दिख रहा होता है उसे नज़र भर कर तो दूर एक नज़र भी नहीं देखते हैं। बाहर आते-आते मैंने और पतिदेव ने बच्चों से मुस्कुराते हुए आँखों के इशारे से पूछा कैसा लगा ? तो दोनों बच्चों ने भी हँसते हुए अपने-अपने दाहिने हाथ की तर्जनी और अँगूठे को मिलते हुए जो एक्सप्रेशन दिए उससे उनकी मनोदशा समझ हम मन ही मन शुक्र मनाया कि इन्हें अच्छी चीज़ों की समझ है। दोपहर हो गई थी, लंच का समय था और अचलगढ़, गुरुशिखर, अर्बुदा देवी का मंदिर, ॐ शांति पार्क, और सनसेट पॉइंट अभी बाकी थे क्योंकि कल अगले पड़ाव के लिए रवाना होना था।

समय की कमी के कारण लंच के लिए न रुकते हुए हम सीधे अचलगढ़ के लिए चल पड़े वहीं कुछ खा लेना तय हुआ। दिलवाड़ा मंदिर से अचलगढ़ का किला लगभग 8 किमी दूरी पर है। अचलगढ़ पहुँचने पर ड्राईवर ने जहाँ गाड़ी रोकी वहाँ से आस-पास कहीं कोई क़िला नहीं दिखाई दे रहा था, पूछने पर पता चला कि जो थोड़ी ऊँचाई पर मिट्टी के टीलों में ऊपर -नीचे कुछ कमरों जैसा बना दिख रहा है, वही क़िला है जहाँ अब कोई पर्यटक नहीं जाता।

और इस वक़्त जहाँ हम खड़े हैं वो भी कभी क़िले का हिस्सा हुआ करता था। ढेर सी दुकानों के बीच से एक संकरा रास्ता अचलेश्वर महादेव के मंदिर की ओर जा रहा था, दर्शन लाभ के लिए हम भी उसी रस्ते पर आगे बढ़े। अचलेश्वर महादेव के मंदिर में शिवलिंग नहीं है, एक गहरे गढ़े में शिव जी के अँगूठे की पूजा होती है। ऐसी मान्यता है कि जब काशी विश्वनाथ जी ने अपना पैर फैलाया था तो उनका अँगूठा इस जगह तक पहुँचा था। मंदिर के द्वार के सामने पीतल के एक बड़े नंदी महाराज विराजमान थे। मंदिर से वापस निकल कर कुछ खाने लायक कोई रेस्टोरेंट नहीं दिखा तो ताज़ा गन्ने का रस पी कर कुछ राहत पाई। उसी दौरान वहाँ घूमते एक 15-16 साल के लडके ने हमें अचलगढ़ की कहानी सुनानी शुरू कर दी और ज़िद करके अपने साथ गन्ने के रस की दुकान के पीछे की ओर ले गया, जहाँ से कथित क़िला साफ़ दिखाई दे रहा था। क़िले के नीचे एक छोटे तालाब जैसा कुंड बना था जिसमे भैंसों की तीन प्रतिमाएँ थीं। तालाब के दूसरे कोने पर बहुत ही छोटे छोटे कमरों जैसे कुछ दिख रहे थे, जिन्हें वह किसी ऋषि का निवास बता रहा था। जैसे तैसे उस खामख्वाह के गाइड से छुटकारा पाकर हम वहाँ से निकले। गन्दगी का ढेर, अनचाहा गाइड, बेतरतीब बाज़ार, कथित क़िला, यदि अचलेश्वर महादेव मंदिर के दर्शन लाभ का अवसर न होता तो लंच छोड़कर यहाँ तक आना पूरी तरह व्यर्थ ही जाता।

अचलगढ़ से लौटते हुए रास्ते में ही ॐ शांति पार्क दिख गया जिसे देखने का हमारे मेज़बान ने अनुरोध किया था। पार्क देखने गए लेकिन मेरी राय में जिन विषयों में आस्था ना हो उनसे बचने का प्रयास करना चाहिए। यहीं से गुरुशिखर के लिए चल पड़े। गुरुशिखर अरावली पर्वत श्रृंखला की सबसे ऊँचा शिखर है। ओरिया चेक पोस्ट से एक रास्ता अचलगढ़ जाता है और दूसरा गुरुशिखर। गुरुशिखर का रास्ता बहुत सुन्दर है ओरिया झील के किनारे-किनारे सँकरे रास्ते से खेत खलिहान देखते हुए किसी प्राकृतिक स्थल पर होने का एहसास हो रहा था। गुरुशिखर पहुँच कर ऊँचाई पर चढ़ कर जाने का सोच कर पहले तो मन आगे पीछे

हो रहा था फिर लगा कि यहाँ तक आ ही गए हैं तो ऊपर भी चले ही चलते हैं। गुरुशिखर पर चढ़ाई का पूरा रास्ता एक बाज़ार है, हेंडीक्राफ्ट, कोल्ड ड्रिंक्स, चिप्स, आइसक्रीम, खिलौने, प्रसाद और भी जाने क्या-क्या ? इन दुकानों के बीच अगर कुछ अलग था तो थोड़ी-थोड़ी दूर पर मिट्टी की काली मटकियों में दही लस्सी बेचते स्थानीय ग्रामीण और लाल मूली जो अचलगढ़ और यहाँ की खासियत है। लंच तो किया नहीं था सो लस्सी और मूली चखने से खुद को नहीं रोक पाए। गुरुशिखर के ऊपर एक तिरछी सी चट्टान के नीचे भगवान् दत्तात्रेय का मंदिर है। मंदिर के पिछले किनारे पर एक बड़ा-सा धातु का घंटा लगा हुआ है। गुरु शिखर हरियाली के नाम पर कैक्टस से आच्छादित है। शिखर के पीछे की तरफ से एक रास्ता वेधशाला की ओर जाता है लेकिन वेधशाला में पर्यटकों को अनुमति नहीं है। वेधशाला में स्थापित इन्फ्रा रेड टेलिस्कोप से खगोलीय पिंडों का अध्यन किया जाता है। मंदिर दर्शन कर हमने भी औरों की तरह घंटे के साथ कुछ तस्वीरें खिंचवाईं। अचलगढ़ और ॐ शांति पार्क के अनुभव के बाद गुरुशिखर आकर अच्छा लग रहा था। खुली हवा में नैसर्गिक सौन्दर्य को निहारते हुए हमने यहाँ कुछ समय बिताया और रवानगी ली क्योंकि सूरज डूबने से पहले सन सेट पॉइंट पहुँचना था। लौटते हुए अर्बुदा देवी का मंदिर पड़ा जो एक छोटी पहाड़ी पर था। मान्यता है कि इसी अर्बुदा पहाड़ी पर सती पारवती के ओंष्ठ गिरे थे अतः यह एक शक्तिपीठ है, समय की कमी की वजह से कार से ही देवी माँ को नमन करते हुए आगे बढ़ गए।

सन सेट पॉइंट हमारी माउंट आबू यात्रा का आख़िरी टास्क। हाँ टास्क ही जिस तरह से हम यहाँ पहुँचे वो यूँ ही था। पार्किंग पर ही समझ आ गया कि भीड़ बहुत है। पहाड़ी जगहों में यूँ भी जगह कम होने से भीड़ ज़्यादा लगाने लगती है। पार्किंग से सन सेट पॉइंट लगभग एक किलोमीटर था। घोड़े और हाथ गाड़ी की सवारी उपलब्ध थी। बच्चों को घोड़े पर बिठा कर हम दोनों ने पैदल ही जाना तय किया। तेज़ चाल चलते हुए जैसे-तैसे पॉइंट पर पहुँचे हालाँकि सूर्यास्त में कुछ समय बाकी था लेकिन भीड़ इतनी अधिक थी कि खड़े होने के लिए भी जगह मिलना मुश्किल था। ऊँचे-नीचे पत्थरों, पेड़ों, टेकरियों हर जगह कैमरा, मोबाइल थामे लोग, हद से ज़्यादा शोर, रही सही कसर खोमचे वाले पूरी कर दे रहे थे। थोड़ी देर के लिए हम दोनों पशोपेश में पड़ गए कि अब क्या किया जाए ? क्योंकि बच्चे सन सेट देखना चाह रहे थे, फिर हिम्मत करके बच्चों को लेकर लोगों के बीच से जगह बनाते हुए रेलिंग के सामने पहुँचने में कामयाब रहे। हम चारों वास्तविक अर्थ में एक पाँव पर खड़े हो सूरज के डूबने का इंतज़ार करते रहे। बमुश्किल एक मिनट के लिए सूरज दिखा और फिर बादल की ओट में जो छिपा, तो कब अस्त हो गया किसी को पता ही नहीं चला। ठीक वैसे ही जैसे कोई बच्चा स्टेज पर आए और दर्शकों की भारी भीड़ से घबराकर परदे के पीछे छिप जाए और परफॉर्म करने से ही इंकार कर दे। लगभग सभी हिल स्टेशनों और समुद्री पर्यटन स्थलों पर सन राइज और सन सेट पॉइंट पर्यटकों के लिए विशेष आकर्षण का केंद्र रहते हैं लेकिन यहाँ जैसा मजमा और मंज़र इससे पहले कहीं देखने में नहीं आया।

इस शहर में हिल स्टेशन वाली शांति और प्राकृतिक सुन्दरता की कमी है आस-पास के पर्यटन स्थलों को और विकसित तथा और व्यवस्थित किए जाने की आवश्यकता है।

अगली सुबह दिलवाडा के मंदिरों के सौन्दर्य से अभिभूत हम अगले पड़ाव के लिए रवाना हुए ....

❒❒❒

सी-4 ग्रीन लैंड , विशाल नगर
तेलीबांधा, रविग्राम
रायपुर 492001 छत्तीसगढ़
मोबाइल 9981504544
ईमेल rajshreemishra19@gmail.com

रपट

भारत भवन में 11 दिवसीय 36वाँ वर्षगाँठ समारोह सम्पन्न

प्रवीण पाण्डेय

हाल ही में भारत भवन में संपन्न 36वीं वर्षगाँठ समारोह में कलाओं से जुड़ी विभिन्न मनमोहक प्रस्तुतियाँ कला प्रेमियों के लिए खास आकर्षण का केन्द्र रही। 11 दिनों तक नृत्य, कला, संगीत और रंगमंच से सजी आकर्षक प्रस्तुतियों में देश के ख्यातिनाम कलाकारों ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई। तो दूसरी ओर भारत भवन ने स्थापना के लगभग चार दशक बाद इसके विस्तार की नींव रखी। 13 फरवरी से शुरू हुए इस कला उत्सव का आगाज हमारे समय की ख्याति प्राप्त नृत्यांगना सोनल मानसिंह के निर्देशन में तैयार हुई स्वच्छता अभियान पर केंद्रित प्रस्तुति संकल्प से सिद्धि की प्रस्तुति के साथ हुआ। इसके साथ ही सुधीर पटवर्धन और गोंड आर्टिस्ट रामसिंह उरवैती के चित्रों पर केंद्रित प्रदर्शनी का शुभारंभ समारोह के पहले दिन किया गया। इस नाट्य प्रस्तुति के माध्यम से छह शिष्य नृत्यांगनाओं ने देवी महिषासुर मर्दनी, शिव विषपान, मोहिनी भस्मासुर, कृष्ण कालिया मर्दन प्रसंग से स्वच्छता का संदेश दिया।

न्यासी सचिव की घोषणाएँ

. विश्व कविता केंद्र स्थापित होगा।

. रंगमंडल की रेपटटरी शुरू होगी।

. भारत भवन के पाँच प्रभागों पर फैलोशिप शुरू की जाएगी।

. पाठ, विमर्श, प्रस्तुति पर आधारित ऋग्वेद समारोह का आयोजन होगा।

. निर्मल वर्मा, विद्यानिवास मिश्र पर केंद्रित प्रसंग कार्यक्रम का आयोजन होगा।

चित्र प्रदर्शनी में प्रदेश के 22 युवा शामिल

चित्रकला करने का भारत भवन में अलग ही मज़ा है। यहाँ की हसीन वादियाँ और इस ऐतिहासिक कला केंद्र चित्रकारों को कूची चलाने के लिए प्रेरित करती हैं। ऐसा मौका मिला प्रदेश के 22 युवा कलाकारों को। जिन्होंने समकालीन चित्र प्रदर्शनी में सात दिनों तक कैनवास पर अपनी अभिव्यक्ति के रंगों को बिखेरा। इतना ही नहीं वर्कशॉप में शामिल युवाओं को कला की बारीकियों से अवगत कराया गया। इसमें युवाओं को कई प्रतिष्ठित कलाकारों से इंट्रेक्ट कराने का अवसर मिला। जिसमें सुधीर पटवर्धन ने युवा कलाकारों को पेंटिंग की बारीकियों से अवगत कराते हुए इसके चुनौतियों के बारे में जानकारी दी।

रंगमंच प्रस्तुतियों में आशीष और आलोक की अविस्मरणीय प्रस्तुति

समारोह के दौरान रंगमंच से जुड़ी गतिविधियों में 15 फरवरी को नादिरा बब्बर के निर्देशन में नाटक दयाशंकर की डायरी का मंचन किया गया। वरिष्ठ रंगकर्मी और अभिनेता आशीष विद्यार्थी के एकल अभिनय पर केंद्रित यह वर्तमान समय में खासा प्रासंगिक था। इसमें दिखाया गया कि एक आम आदमी अपनी ज़िंदगी की जद्दोजहद से जूझ रहा होता है तो कभी अपने सपनों को जीने की कोशिश करने लगता है और कभी असल ज़िंदगी व ख़्वाबों के बीच उलझ कर रहा जाता है। अंततः दिल को छूने वाले संवादों के साथ आशीष विद्यार्थी का सधा हुआ अभिनय इस नाटक की ताकत था, जिसने दर्शकों को आख़िरी तक दयाशंकर से जोड़े रखा। इसके साथ ही 16 फरवरी को पुणे के आसक्त समूह के कलाकारों ने नाटक मैथमैजिशियन की प्रस्तुति दी। मोहित टाकलकर द्वारा निर्देशित इस सोलो एक्ट प्ले में 500 शताब्दी के दौरान बेवीलॉन और पर्शिया के युद्व के बीच कहानी दिखाया गया है। यह कहानी निकोर नामक कैरेक्टर के ईदगिर्द घूमती है। वहीं, 17 फरवरी को वर्ष के सबसे चर्चित नाटक नटसम्राट का मंचन हुआ। आलोक चटर्जी के अभिनय में हुए इस नाटक का निर्देशन जयंत देशमुख ने किया। नाटक की

कहानी एक थिएटर आर्टिस्ट गणतपतराव रामचंद्र बेलवलकर के इर्द-गिर्द घूमती है। जो रंगमंच का राजा है, उसने अपनी ज़िंदगी में शेक्सपियर के सभी नाटक के किरदार प्ले किए। थिएटर में नटसम्राट की उपाधि के बाद वो रिटायर्ड होता है, लेकिन उसकी ज़िंदगी से थिएटर कभी नहीं जाता।

कहानी व कविता पाठ

18 फरवरी को कहानी पाठ और कविता पाठ का आयोजन किया गया। जिसमें अशोक मिश्र, उद्‌यन वाजपेयी, जयशंकर, तरुण भटनागर, रिजवानुल हक, का कहानी पाठ और गगन गिल, पंकज राग, एकांत श्रीवास्तव, कुमार अनुपम, विवेक निराला आदि का कविता पाठ हुआ।

अंतरंग में गूँजी बस्तर बैंड की धुनें

समारोह में 19 फरवरी को अनूपरंजन पांडे के निर्देशन में बस्तर बैंड की प्रस्तुति हुई। बस्तर बैंड के कलाकारों ने देवपाड़ का गायन किया। देवपाड़ देवताओं का आह्वान है। जिसमें मंगलधुनों के साथ पूजा अर्चना से जुड़ी धुनों को प्ले किया। कलाकार गायन के साथ-साथ करतब भी दिखा रहे थे। बैंड के 22 सदस्यीय कलाकार परंपरागत वाद्य यंत्रों के साथ मंच पर दिखाई दिए। इसमें ढोल, तोरी, तोमर, देव, तहंडोर, टुट्टा, गुंडाबग, नरपराय, धनकुल, बाँस, हुलकी जैसे लगभग 55 परंपरागत वाद्ययंत्रों के माध्यम से बैंड ने प्रस्तुति दी। इससे पहले भोपाल के केरल समुदाय के कलाकारों ने चेंडावाद्ययंत्र की प्रस्तुति दी। हज़ारों साल पुराने इस वाद्ययंत्र का प्रयोग मंदिरों में किया जाता है। मधुसूदन कर्था एवं 10 सदस्यीय दल ने इस यंत्र की खुबसूरत प्रस्तुति दी।

कृष्ण के अटूट बंधन को पिरोया

20 फरवरी को नृत्य नाटिका मीरा का प्रदर्शन किया गया। डॉ. लता सिंह मुंशी के निर्देशन में हुई यह प्रस्तुति भरतनाट्यम पर केंद्रित रही। जहाँ डॉ. लता ने 60 मिनट की इस प्रस्तुति में 7 नृत्यांगनाओं के साथ मीरा के संपूर्ण जीवन को नृत्य में पिरोया। नृत्यांगनाओं ने मीरा और कृष्ण के जीवन के अलग-अलग प्रसंगों को खुबसूरत अंदाज़ में मंच पर प्रदर्शित किया। इस प्रस्तुति को तैयार करने के लिए डॉ. लता सिंह मुंशी ने मीरा पदावली, मीरा जायसी, मीराबाई और भक्ति की अध्यात्मिक अर्थनीति, संत मीराबाई, जैसी किताबों से उनके जीवन पर आधारित पदों पर नृत्य तैयार कर उसे राजस्थानी शैली में बखूबी पिरोया।

प्रदेश के लोक अंचलों की मनमोहक प्रस्तुतियाँ

21 फरवरी को मप्र के विभिन्न लोक अंचलों से आए कलाकारों की प्रस्तुतियाँ हुई। इसमें दिनेश कुमार धोलपुरे ने मालवी भाषा में संत रविदास के पदों का गायन किया। शशिकुमार पांडे ने बघेली में ऋतुगीतों तो भावना बरोले ने निमाड़ी में ऋतुगीतों की मनमोहक प्रस्तुति दी। जुगलकिशोर एवं कलाकारों ने बुंदेली भाषा में ऋतुगीतों को पेशकर श्रोताओं को मुग्ध किया।

पं. रोनू और गोपालनाथ की जुगलबंदी

22 फरवरी को बाँसुरी और सेक्सोफोन की जुगलबंदी हुई। जिसमें बाँसुरी वादक रोनू मजूमदार और सेक्सोफोन वादक कदरी गोपालनाथ दो वाद्ययंत्रों की सुरीली तान से अंतरंग में बैठे श्रोताओं को मुग्ध कर दिया। कलाकारों ने कर्नाटक संगीत से प्रेरित राग श्वातापी गणपति भजमन के साथ प्रस्तुति का आगाज किया। उन्होंने संक्षिप्त आलाप लेते हुए राग का परिचय दिया। लगभग 15 मिनट की प्रस्तुति के बाद दोनों की कलाकारों ने गणेश वंदना प्रस्तुत की।

पाँच कलाकारों को ग्रैंड अवॉर्ड

समारोह के अंतिम दिन सातवीं समकालीन भारतीय कला द्वैवार्षिकी के तहत ग्रैंड अवॉर्ड और विशेष प्रशंसा पुरस्कार प्राप्त कलाकारों को सम्मानित किया गया। इस दौरान देश के पाँच कलाकारों को ग्रैंड अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। इसमें नई दिल्ली के मनीष पुष्कले, भोपाल की फैजा हुमा, भोपाल की लाडो बाई, बनारस के मृगेन्द्र पी सिंह और वड़ोदरा के नेहल रछ को ग्रैंड अवॉर्ड से सम्मानित किया गया। वहीं, विशेष प्रशंसा पुरस्कार से भोपाल के राजेश अंबालकर, मुंबई की स्मृति दीक्षित, हुकुमलाल वर्मा, भोपाल के नीरज अहिरवार, रामसिंह उरवेती, शम्पा शाह, अनिल गायकवाड़, भिलाई के योगेन्द्र त्रिपाठी, चेन्नई के आर बाला सुब्रमण्यम, देहरादून की गितिका जे चटर्जी, डिंडोरी के हरि सिंह और नागपुर के अविनाश एम राव को विशेष प्रशंसा पुरस्कार दिया गया।

❒❒❒

(लेखक युवा कला पत्रकार हैं।)
मकान नंबर 85, प्रेम नगर कॉलोनी, छोला दशहरा मैदान, विदिशा रोड, भोपाल, मध्यप्रदेश
मोबाइल : 8871755902

रपट

नाटक–मैं हूँ यूसुफ़ और ये है मेरा भाई

प्रज्ञा

गोलियाँ रोटी पर तिलों सी फैलती हैं। कैसा लगता है जब कोई रोटी आधी बाँटने के लिये कदम बढ़ाता है? कभी भूख के लिये लड़ने का जज़्बा जागता है तो सब उम्मीदों के चुकने के बाद भूख ही मर जाती है। कैसा महसूस हो जब कोई आपसे आपका एक सीधा हाथ और उल्टा पाँव माँगने लगे ? जैसे कोई मिट्टी बाँटने पर आमादा हो। वो मिट्टी जिसने आपकी पीढ़ियों को सींचा–सँवारा हो। कैसा लगे जब जड़ों से उखड़ने के दु:ख को आप अपने काँधे पर लाद चलें। अपने उगाए- सींचे पेड़ और अपने बसाए घरों का बोझ ढोते चलें? ऐसा वर्तमान जो ठिठक गया हो, ऐसा अतीत जो मौत के मुहाने पर खड़ा हो। ऐसा अतीत जो बीत नहीं रहा है और ऐसा वर्तमान जिसमें अतीत के विश्वासघात का खंजर धँसा हुआ है। पर विडम्बना यह है कि उसमें से बहते हुए लहू को दुनिया देख नहीं रही है। उससे हो रहे दर्द को सुन नहीं रही है। उससे आती धीमी मौत को महसूस नहीं कर रही है। फिलिस्तीन की धरती पर इज़रायल को बनाए जाने की इसी गहन पीड़ा को बयान करता नाटक, भारत रंग महोत्सव 2017 के दौरान पुणे की 'आसक्त' नाट्य संस्था ने हिंदी–उर्दू में लिखा नाटक 'मैं हूँ यूसुफ़ और ये है मेरा भाई' प्रस्तुत किया। मध्य एशिया के नामी नाटककार अमीर निजार जुआबी के नाटक, सलीमा रज़ा के अनुवाद और मोहित ताकलकर के निर्देशन में एक यादगार प्रस्तुति फरवरी माह में दिल्ली के श्रीराम सेंटर ऑडीटोरियम में हुई।

फिलीस्तीन और इज़रायल की धरती ही ऐसी है, जिसकी हवा में तनाव और शक है। जिसका इतिहास निरंतर स्वयं को दोहराता रहता है। वहाँ पर रंगकर्म स्वयं एक राजनीतिक कार्रवाई बन जाता है। जुआबी निसान नेटिव ड्रामा स्टूडियो से प्रशिक्षित अभिनेता हैं और शिबेर हुर नाम नाट्य संस्था की संस्थापक हैं। एक निर्देशक के तौर पर उनके नाटक हैं, एलाइव फ्रॉम पेलस्टाइन, स्टोरीज़ अंडर ऑक्यूपेशन, वेन वर्ल्ड वाज़ ग्रीन, टेल ऑफ ऑटम, ज़िदारिया–महमूद दरवेश आदि। लेखक के तौर मै हूँ युसुफ़ और ये है मेरा भाई के अतिरिक्त क्लिंगिंग ऑन स्टोन, वॉर ऑर मोर आदि उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। जुआबी का यह नाटक इतिहास के पन्नों से निकला है पर ज़िंदा और साँसें लेता हुआ है। इस नाटक की पृष्ठभूमि में है, सन् 48 का विभाजन। सन् 1948 में जब फिलिस्तीन की धरती से ब्रिटिश शासन का अंत हो रहा था तब संयुक्त राष्ट्र को ब्रिटिश कब्ज़े वाले फिलीस्तीन पर इज़राइल को बसाए जाने का निर्णय लेना था। फिलीस्तीन के लोगों को उम्मीद थी कि शायद संयुक्त राष्ट्र फिलीस्तीन में इज़रायल को बसाने का निर्णय नहीं लेगा; पर निर्णय होता है इज़रायल के पक्ष में। यह निर्णय लाखों लोगों की ज़िंदगियों को बदल कर रख देता है। और फिर शुरू होता है, विस्थापन, हिंसा, हत्याओं का दौर। अमीर निज़ार ज़ुआबी का यह नाटक अली और युसुफ नाम के दो भाइयों के प्रेम, और उनके माध्यम से उस समय की राजनीति, सत्ताओं के दुश्चक्र, आतंक और दमन में पिसते मनुष्यों की कथा कहता है।

नदा मुझे पानी से डर लगता है...... कई दिनों से न नहाए, बुज़ुर्ग हो चले यूसुफ़ को पानी से डर लगता है। उसे कुँए का वो ठंडा पानी डराता है जिसमें वह बचपन में गिर गया था या गिरा दिया गया था। यूसुफ़ को बाहर आने से डर लगता है । यूसुफ को सब जैसा सामान्य बनने से डर लगता है क्योंकि सब जैसे सामान्य लोगों ने उससे उसके भाई अली को छीन लिया है। अतीत और वर्तमान को एक सूत्र में पिरोती दो भाइयों की इस कहानी में प्रेम, विछोह, विस्थापन, राजनीति, जड़ों से उखड़ने की दिल चीरती पीड़ा थी। फिलिस्तीन की धरती और उसके रक्तरंजित इतिहास को लिये नाटक 'मैं हूँ युसूफ और ये है मेरा भाई' को देखना इन्हीं एहसासों से गुज़रना था। एक कोलाहल और उसके बीच से उठती युसूफ़ के भाई अली और उसकी प्रेमिका नदा की प्रेम कहानी। बहुत कम किरदार और बहुत सारी कहानियाँ। बहुत सारी कहानियों में बहती अनेक कविताएँ। तबाह फिलिस्तीन के दु:ख की पूरी लहर मंच से तैरती प्रेक्षागृह में छाती गई। बहुत- सी फिलिस्तीनी कविताएँ चारों ओर बिखर रही थीं उन्हें किसी अनुवाद की ज़रूरत न थी। पीड़ा की ध्वनि और अर्थ हर जगह एक से ही होते हैं। मंच से एक लंबी कविता कानों से उतरकर साँसों संग धड़कने लगती है। बचपन में अनजाने ही अपने भाई युसूफ़ को कुँए में धकेलने वाले बड़े भाई का मौत की अंतिम घड़ी में कन्फेशन और उसके बेहरकत जिस्म को जिलाये रखने वाले की कोशिश में युसूफ़ का रोना और उसे माफ करना। दोनों का गहरा प्यार और मौत की बना दी गई दूरी। ऐसी दूरी जहाँ न प्रेमिका नदा है न प्यारा भाई युसूफ़, मंच पर काले सफ़ेद कपड़ों में ढके कुछ गिद्ध नाच रहे हैं जो अली के निस्पंद होने की राह तकते हैं। अपने चन्द सिक्कों से बेइंतहा मोहब्बत रखने वाला युसूफ़, भाई के लिये सिक्के भी कुर्बान करने की पेशकश करता है, पर उसकी मौत को रोक नहीं पाता। बचपन में कुएँ में गिरने से लगी चोट से अर्धविक्षिप्त होकर निकला युसूफ़, अली के बाद एक और बड़े कुएँ में गिरता है। दुनिया की नज़र में वह अहमक, कमअक्ल इंसान खोज लेता है नदा को। अली की प्रेमिका नदा को। सालों साल का एक रिश्ता है यूसुफ़, नदा का। ऐसी औरत जो कभी अपने शौहर संग न रह न सकी। उसके भाई की देखभाल उसके जीवन का पहला निर्णय बन जाता है। एक औरत के जीवन का ठोस

निर्णय। एक वादा अपने अली से –'मैं और तुम साथ रहेंगे पूरी ज़िंदगी।' यूसुफ़ के संग ज़िंदगी बिताना, उसे बच्चों सा पालना, उसकी ज़िद मानना नदा को खलता ही नहीं। अली कहीं नहीं है पर अली को नदा और यूसुफ़ ज़िंदा रखते हैं। नाटक के अंतिम दृश्य में मंच पर एक टेबल पर सिर्फ रौशनी नहीं उतरती तीन प्यारी ज़िंदगियों का खूबसूरत रिश्ता उतरता है। ज़िंदा युसूफ़ को अपनी गोद में सुलाती नदा मन के सामने बैठे अली से कहती है –'सो जाओ मेरी जान' .....रात घिरती है, अँधेरा बढ़ता है और सारे दर्शक खड़े होकर बस तालियों और बहती आँखों से अपने जज़्बात निकालकर रख देते हैं। एक दर्शक का सर मंच पर झुका ही रह गया।

गाँव का बेवकूफ लड़का- यूसुफ़

एक मस्तमलंग लड़का, एक हँसने-खिलखिलाने वाला लड़का, खेल-खेल में अपने भाई के संग ज़मीन पे लोट लगाने वाला लड़का, अपने चंद सिक्कों से बेइंतहा मोहब्बत करने वाला, कभी-कभी बहुत घबरा जाने वाला, या अली का भाई-कौन है ये यूसुफ़? यूसुफ़ जिसे दुनिया आधा पागल या पागल करार देती है। यूसुफ़ जो अपने भाई अली और उसकी प्रेमिका नदा के बीच एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी है या बहुत बड़ी बाधा। नदा का पिता उसकी वजह से अपनी बेटी को अली को नहीं सौंपना चाहता। जिसके चलते एक बड़ी निराशा में अली पर नदा के पिता की हत्या का आरोप लगाया जाता है। एक बेफिक्र, अलमस्त पगला- कौन है आखिर ये यूसुफ़? यह यूसुफ़ ही है जो इस समझदार दुनिया को अपने कम समझदार होने से आईना दिखाता है। पूरी दुनिया जब जंग और हत्याओं की समझदारी को जी रही है। स्वार्थ और अवसरवादिता को दुनियादारी का जामा पहना रही है तब गाँव का बेवकूफ लड़का युसुफ़ अपनी बेवकूफियों से दुनिया को सबसे सच्चा और सीधा सबक सिखाने का माद्दा रखता है।

यों तो नाटक का ब्रोशर युसुफ़ नाम के मिथकीय पात्र का एक संदर्भ भी स्पष्ट करता है जिसका रिश्ता कुरान से जुड़ता है। कुरान में यूसुफ़ का ज़िक्र है। युसुफ़, याकूब का बेटा जो बाद में चलकर हजरत यूसुफ़ कहलाया। ग्यारह भाइयों में सबसे ज़्यादा बुद्धिमान और खूबसूरत। जिसे भाइयों ने जलन के मारे कुँए में धकेल दिया। जलन की वजह था उसका ख़्वाब। ख़्वाब जिसमें ग्यारह सितारे, सूरज और चाँद उसके इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। पिता ने उसके सपने को उसके भविष्य से जोड़ा। भविष्य जिसमें उसकी शोहरत और महानता झाँक रही थी। पिता ने साफ मना किया था इस ख़्वाब को किसी को बताने के लिए पर यूसुफ़ को भाइयों से भला क्या खतरा था। उसने बता दिया। वो जान भी नहीं पाया कि भाई उसके हत्यारे हो जाएँगे। पिता का खौफ यकीन में बदल गया। भाई कसाई हो गए और यूसुफ़ को मिला एक दर्दनाक अँधेरा। अँधेरा जिसने उसके जीवन की दिशाएँ धुँधला दीं। भाइयों ने पिता के आगे एक झूठ रचा उसकी मौत का। कुँए में पड़े यूसुफ़ की चीखें वहाँ से गुज़रते एक कारवाँ ने सुनीं। उस कारवाँ ने उसे निकालकर मंडी में बहुत सस्ता बेच डाला। ग्राहक की बीबी यूसुफ़ के संग रहना चाहती थी। वह उसे पसंद करती थी पर यूसुफ़ के इंकार से इस बार भी उसे एक नया कुँआ मिला। चार साल की कैद। पर किस्मत फिर रंग लाई। बादशाह के एक मुलाज़िम ने उसका सपना सुनकर उसे बादशाह के पास पहुँचाया। बादशाह ने एक भयावह सपना देखा जिसका अर्थ ही यूसुफ़ ने नहीं बताया बल्कि भविष्य की आहट पाकर राज्य को तबाही और भुखमरी से भी बचा लिया। यूसुफ़ बादशाह का खजांची बनाया गया। और उसका पूरा परिवार उसे मिल गया। पर सवाल उठता है कि कुरान से निकलकर आई कथा का और उसके यूसुफ़ से नाटक के यूसुफ़ का क्या मेल? कुरान में वर्णित हज़रत यूसुफ़ भी अपने पिता का प्यारा था। वह भी कुँए में फेंका गया पर अनजाने ही। कुरान की इस कहानी को नाटक के यूसुफ़ से जोड़ने का भला क्या औचित्य? पर कोई न कोई कड़ी तो होगी ही वरना नाटक के ब्रोशर में विस्तार से इसे लिखा ही क्यों जाता? मेरा दर्शक दोनों यूसुफ़ में जो कड़ी जोड़ पाया उसके अनुसार यूसुफ़ कुरान की कथा से कई असमानताओं के साथ कुछ साम्य लिए है। दोनों ही दुनिया के छल- छद्म से दूर बहुत सीधे हैं। नाटक का यूसुफ़ एक साधारण ज़िंदगी बिताने वाला वो शख्स है जो दुनिया की नज़र में पागल है पर उसका भाई, मृत पिता और एक शिक्षक की नज़र में वह कोई साधारण बालक नहीं है। उसके दिल में अरमान भी हैं और उसका दिल धड़कता भी है। वह विस्मृति का शिकार भी है और जल्द घबरा भी जाता है। पर नाटककार ने बड़ी खूबसूरती के साथ कुरान की कथा से आगे बढ़कर इस यूसुफ़ को गढ़ा है। एक ऐसा शख्स जिससे दुनिया कोई उम्मीद नहीं रखती वह बड़ी मजबूती से विपरीत परिस्थितियों में जीने का आधार बनता है। वह पगला युद्ध में खो गई अली की प्रेमिका को ढूँढ़ निकालता है। अपने भाई की मौत के दुख के बाद फिर से ज़िंदगी को लौटा लाता है। पूरे नाटक में उसका कम समझदार होना और हकलाहट संग रहती है पर प्रकारांतर से ज़िंदगी की अजब पहेली का सुलझाने का रास्ता यूसुफ़ ही खोज निकालता है। एक बहुत प्यारा इंसान जो अपने बुद्धुपन में नदा और अली को जिलाए रखता है। एक को ज़िंदगी देकर तो दूसरे को मौत के बावजूद ज़िंदा रखकर। मंच पर बूढ़े और जवान यूसुफ़ को रचना भी निर्देशकीय कौशल का कमाल ही कहा जा सकता है। यों अली, नदा और यूसुफ़ के जवान और बूढ़े रूप, दो भिन्न परिस्थितियों की कथा को गूँथना सरल नहीं था। पर कहीं कविता, कहीं गीत, कहीं स्टिल, कहीं प्रकाश से इसे मंच पर रचा गया। अतीत और वर्तमान की दो कथाओं में ये जवान, बूढ़े पात्र अलग-अलग दिखाना सरल है पर गौर कीजिए नाटक में जवान और बूढ़े यूसुफ़ को एक-दूजे के संग दिखाकर अतीत और वर्तमान को एक करने की युक्ति ने जहाँ नाटक को ऊँचाई प्रदान की वहाँ दर्शक के आस्वाद का कहना ही क्या?

नदा ने कहा था, अली को कहना कि वह उसका पानी है..... नाटक की पूरी कहानी में देखा जाए तो सिर्फ प्रेम है। और युद्ध इस प्रेम पर आतंक सरीखा मंडराता है। अली का प्रेम ही वह पानी है जिसमें नदा मिल जाना चाहती है। नदा और अली एक दूसरे से प्यार करते हैं। पर युद्ध की विभीषिका की भयावहता में प्रेम कहाँ ठहरता है। प्रेम के चरम दृश्य हैं। प्रेम की बहुआयामिता भी है। दो भाइयों का प्रेम, अली और नदा का प्रेम और अपनी मिट्टी से प्रेम। कहीं भी यह कहना नामुमकिन- सा

है कौनसा प्रेम किस पर हावी है। सब अपनी शक्ल में प्रेम हैं। न कोई ऊँचा न कोई नीचा। कोई कमतर नहीं। सबके मिलने का उत्साह और सबके बिछड़ने की कसक भी एक सी। नाटककार-निर्देशक ने इस प्रेम की अद्भुत गढ़न को दर्शक के लिए रचा है। जहाँ ये प्रेम छूटता है जो टीस मंच पर किरदार महसूस करता है वही हॉल में बैठा दर्शक भी। ब्रेख्त के एलियनेशन इफैक्ट से एकदम भिन्न नाटक विशुद्ध साधारणीकरण के सिद्धांत पर ले जाकर दर्शक में वही ऊभचूभ भरता है जिसे नाटककार किरदारों में भरता है और निर्देशक मंच पर उतारता है। यह साधारणीकरण मंच पर फिलिस्तीन रचकर दर्शक को एहसास कराता है कि वह प्रेक्षागृह में नहीं बल्कि नाटक के परिवेश के भीतर है। यही साधारणीकरण है कि दर्शक अभिनेता के दुख से तादात्म्य करता हुआ रोता है। यह साधारणीकरण ही है कि नाटक के अंत में निर्देशक बमुश्किल अपने आँसुओं को रोकता हुआ मंच पर चढ़ता है। नाटक के किरदार मंच पर एक अजब सम्मोहन रच देते हैं। पूरी टीम अपने अभिनय से नाटक के आरंभ से ही एक नाता दर्शक के साथ बना लेती है। उनके मूवमेंट, उनकी आवाज़ और भाव दिल में उतरते चले जाते हैं। यूसुफ़ की नादानी और मासूमियत खींचती चली जाती है। जवान यूसुफ़ का हँसना-रोना, अली-नदा का प्रेम कितनी ही प्रेम कहानियों को जीवंत कर देता है। अपने पिता का हत्यारा अली को समझने की नदा की भूल की कहानी भी साथ चलती है।

प्रेम के इस उभार के साथ युद्ध की विभीषिका के दृश्यों को रचना दो चरम के बीच कहानी और किरदारों को रखने की कड़ी चुनौती सा है। इसमें न सिर्फ प्रेम के खोने का निजी दुख है बल्कि प्रेम निजी से चलकर सामाजिक भूमि पर प्रेम उतरता है। जहाँ अपनी धरती,आसमान, चाँद-सितारे, पेड़-फसल, धर-द्वार सब छूटने-छीने जाने के भय के संग आसन्न मृत्यु सामने खड़ी दीखती है। नाटक में समय रचा गया है 1948 का जब फिलिस्तीन में ब्रिटिश मैंडेट समाप्त होने वाला है। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्धारित किया जाना बाकी था कि ज़मीन पर किसका नियंत्रण होगा। एक छोटे से गाँव में प्रेम की कथा के बीच जंग छिड़ जाती है। दुख, आक्रोश, प्रतिरोध के अनेक रंग चेहरों पर छा जाते हैं। बेघर, बेज़मीन लोगों के दुख के साथ बड़ी संख्या में विस्थापन और मृत्यु सामने आते हैं। सामाजिक जीवन में राजनीतिक असंतोष की छायाएँ साफ दिखाई देती हैं। पूरा गाँव तबाही की ओर चला जाता है। उजड़ते लोग, मिटते घर और ज़मीन से बेदखली की अनेक दुख भरी दास्तानें। कैम्प में शरणार्थियों का जीवन जीते लोग। बहुत से मिटा दिए गए और बाकी अपनी मिट्टी और यादों के घरों से महरूम कर मिटा दिए गए। कितने गोलियों में भून डाले गए। इन सबके बीच वृद्ध नदा की बेहद सधी सशक्त आवाज़ में दुख में डूबे गीत गाना। बार-बार इन गीतों के समय पानी के घड़े उठाए लोगों का मंच के एक विंग से आकर दूसरे में समा जाना और गाती हुई नदा का अंतिम प्राणी के रूप में इस पंक्ति में शामिल हो जाना। इसे देखकर लगा कि रिहर्सल के कड़े परिश्रम में इसे तैयार किया गया। छोटे-छोटे दृश्यों में प्रेम, हिंसा, धोखे, युद्ध घोषणाओं की सघनता को बहुत कुशलता से रचा गया। पूरा नाटक अपनी अनेक कहानियाँ लिए कविता की शक्ल में दर्शक से संवाद करता है।

नाटक में ब्रिटिश सैनिक रूफस समूचे वैश्विक समुदाय की संवेदनहीनता, घृणा, और गैर जिम्मेदारी का प्रतीक बन कर आता है। जिस समय फिलिस्तीन युद्ध की आग में जल रहा है उस समय में ये ब्रिटिश पात्र एक तरफ फिलिस्तीन को सुरक्षित रखने का दावा करता है वहीं अपने घर वापस जाकर चैन की ज़िंदगी जीने के सपने देखता है। जिस समय में यू.एन., फिलिस्तीन की धरती पर इज़रायल को बनाने को स्वीकृति दे रहा था वह उस समय इस ब्रिटिश पात्र की तरह ही व्यवहार कर रहा था। इज़रायल के अस्तित्व को स्वीकृति और फिलिस्तीन के अपनी धरती पर हक के नकार में दुनिया के समझदार लोग सब यू.एन. में एकत्र हो जाते हैं।

और वह पेड़ को ही पीठ पर लादे चल पड़ा..... युद्ध के दौरान अनिश्चय में झूलते लोगों की मानसिक स्थिति और उथल-पुथल को निर्देशक ने मंच पर बहुत खूबी के साथ उतारा। पूरे नाटक के अनेक दृश्यों में कुछ प्रतीकों का प्रयोग इसे और मार्मिक बना पाया। मसलन, फिलिस्तीन की धरती से , उसके एक छोटे से गाँव से उजड़ते हुए कंधे पर एक पेड़ के ढोए जाने का दृश्य अपनी समूची संवेदनशीलता के साथ उभरता है। आम जनता के भौगोलिक क्षेत्र पर कब्जे के साथ उनका सब निजी नष्ट किया जा रहा है। नाटक छोटे से मंच पर इस बड़ी घटना को पेड़ के प्रतीक से दिखाता है। पेड़, पेड़ तो है ही साथ ही ढोने वाले का अब तक का जीवन भी है। उसमें उसकी साँसें हैं, बहुत सी उजली हरियाली है, अनुभवों की ऊष्मा है। पेड़ अपने आप में एक पूरा जीवन है। कंधे पर ढोया जाने वाला पेड़ जैसे बरसों से सींचे जीवन को उखाड़कर उसकी लाश ढोने सा है। ये लाश है उसकी अपनी धरती के मिटते वजूद की और खुद उसकी। इस एक व्यक्ति में उस दौर की पूरी पीड़ा का साक्षात्कार कराया गया है। पीड़ा के इस दृश्य को रचनात्मक और कलात्मक तरीके से रचा गया। ऐसा लगता है कि जैसे वह फिलिस्तीनी पेड़ को नहीं बल्कि पूरे फिलिस्तीन को अपनी पीठ पर लादे निकल पड़ा हो। वह जानता है कि शायद वह पेड़ दूसरी ज़मीन पर शायद ही उगे-पनपे-फूले पर यह उसकी आख़िरी कोशिश है। वह शिद्दत से चाहता है कि वह उस पेड़ को बचा ले, क्योंकि वह जानता है कि यदि पेड़ बच गया तो शायद आने वाली पीढ़ियों के लिए वह फिलिस्तीन का कुछ हिस्सा बचा लेगा।

हम न समय देते हैं और न समय लेते हैं..... इसी के साथ अली की मौत की अंतिम घड़ियों में मंच पर काली-सफेद पोशाक में गिद्धों के झुंड का आना भी प्रतीकात्मक हैं। मंच पर उनका वृत्ताकार घूमना और कहना- 'हम न समय लेते हैं और न समय देते हैं'

विनाश छायाओं के प्रतीक गिद्ध मौत और तबाही को प्रतीकित करते हैं। यह तबाही कई रूपों में उजागर होती है। नदा को खोजते अली का बेवक्त, बेमौत मारे जाने के रूप में। भाई की मौत से जूझ रहे यूसुफ़ के रूप में, मौत के साथ अली-यूसुफ़ के प्रेम की मौत के रूप में। अंतिम समय में अली का यूसुफ़ को बचपन में कुँए में धकेलने का अपराध स्वीकार और यूसुफ़ का क्षमा करने के बावजूद सब कुछ खत्म होना। नदा-अली के भावी सपने की मौत के रूप

में। और इन सबके साथ इंसानियत की मिट्टी में इंसान विरोधी युद्धों द्वारा फैलाई जा रही घोर अमानवीयता का इतिहास दोहराने के रूप में। क्या विडम्बना है कि जो जाति युद्धऔर नस्लीय घृणा का शिकार हुई वह उस बर्बर तरीके को अंजाम देती है। नाटक में कहीं युद्ध दिखाया नहीं गया है। न सेना हैं, न आततायी हैं और न ज़मीन कब्ज़ाने वालों के चेहरे। मंच पर आतंकित चेहरों और पार्श्व से उठती मशीन गन की ध्वनि पूरे युद्ध को रच देती है। मंच पर ब्रिटिश प्रशासन का एकमात्र नुमांइदा रूफस है जो अपने रेडियो से प्रसारित खबरों के जरिए गाँव को सूचित किया करता है। वह भी अपनी सोच और कर्म में एकदम अमानवीय है। खूनी कवायदों का मज़ा लेने वाला।

कविता, कहानी, मिथक, इतिहास, समकाल और प्रतीक के ढाँचे में उतर इस नाटक को निर्देशक मोहित ने बड़ी सफलता के साथ मंच पर उतारा। उनका कहना था- 'हर दिन मैं रिहर्सल हॉल में एक नए उत्साह और इस नाटक की विभिन्न परतों और वृत्तांतों को खोलने के इरादे के साथ प्रवेश करता और जब वहाँ से निकलता तो आँखें नम और गल सूखा।' मोहित ताकलकर का नाट्य ग्रुप 'आसक्त' पुणे का चर्चित और सक्रिय ग्रुप है।

इस प्रस्तुति को दर्शक की स्थायी स्मृति का अंग बनाने वाले कलाकार में वृद्ध नदा के किरदार में इप्शिता चक्रवर्ती, युवा यूसुफ़-अजीत सिंह पालावत, वृद्ध यूसुफ़-आशीष मेहता, अली-जितेंद्र जोशी प्रमुख रूप से रहे। इनके अतिरिक्त निनाद, मृण्मयी, संदीप शिखर का अभिनय और पार्श्व के कलाकारों का श्रम इस प्रस्तुति को अपना सार्थक योगदान दे सका। यह नाटक अपनी पूर्व प्रस्तुतियों में भी काफी सफलता अर्जित कर चुका है पर दिल्ली में 'आसक्त' द्वारा इस नाटक की पहली प्रस्तुति अपनी कथावस्तु और अभिनय के कारण याद के दरवाज़े से ओझल नहीं होगी।

❑❑❑

ई-112, आस्था कुंज अपार्टमेंट्स
सेक्टर -18, रोहिणी, दिल्ली-89
ईमेल : pragya3k@gmail.com
मोबाइल : 9811585339

लेखकों से अनुरोध

'शिवना साहित्यिकी' में सभी लेखकों का स्वागत है। अपनी मौलिक, अप्रकाशित रचनाएँ ही भेजें। पत्रिका में राजनैतिक तथा विवादास्पद विषयों पर रचनाएँ प्रकाशित नहीं की जाएँगी। रचना को स्वीकार या अस्वीकार करने का पूर्ण अधिकार संपादक मंडल का होगा। प्रकाशित रचनाओं पर कोई पारिश्रमिक नहीं दिया जाएगा। बहुत अधिक लम्बे पत्र तथा लम्बे आलेख न भेजें। अपनी सामग्री यूनिकोड अथवा चाणक्य फॉण्ट में वर्डपेड की टैक्स्ट फ़ाइल अथवा वर्ड की फ़ाइल के द्वारा ही भेजें। पीडीएफ़ या स्कैन की हुई जेपीजी फ़ाइल में नहीं भेजें, इस प्रकार की रचनाएँ विचार में नहीं ली जाएँगी। रचनाओं की साफ़्ट कॉपी ही ईमेल के द्वारा भेजें, डाक द्वारा हार्ड कॉपी नहीं भेजें, उसे प्रकाशित करना अथवा आपको वापस कर पाना हमारे लिए संभव नहीं होगा। रचना के साथ पूरा नाम व पता, ईमेल आदि लिखा होना ज़रूरी है। आलेख, कहानी के साथ अपना चित्र तथा संक्षिप्त सा परिचय भी भेजें। पुस्तक समीक्षाओं का स्वागत है, समीक्षाएँ अधिक लम्बी नहीं हों, सारगर्भित हों। समीक्षाओं के साथ पुस्तक के कवर का चित्र, लेखक का चित्र तथा प्रकाशन संबंधी आवश्यक जानकारियाँ भी अवश्य भेजें। एक अंक में आपकी किसी भी विधा की रचना (समीक्षा के अलावा) यदि प्रकाशित हो चुकी है तो अगली रचना के लिए तीन अंकों की प्रतीक्षा करें। एक बार में अपनी एक ही विधा की रचना भेजें, एक साथ कई विधाओं में अपनी रचनाएँ न भेजें। रचनाएँ भेजने से पूर्व एक बार पत्रिका में प्रकाशित हो रही रचनाओं को अवश्य देखें। रचना भेजने के बाद स्वीकृति हेतु प्रतीक्षा करें, बार-बार ईमेल नहीं करें, चूँकि पत्रिका त्रैमासिक है अत: कई बार किसी रचना को स्वीकृत करने तथा उसे अंक में प्रकाशित करने के बीच कुछ अंतराल हो सकता है।

धन्यवाद
संपादक
shivna.prakashan@gmail.com

फार्म IV

समाचार पत्रों के अधिनियम 1956 की धारा 19-डी के अंतर्गत स्वामित्व व अन्य विवरण (देखें नियम 8)।

पत्रिका का नाम : शिवना साहित्यिकी

1. प्रकाशन का स्थान : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

2. प्रकाशन की अवधि : त्रैमासिक

3. मुद्रक का नाम : जुबैर शेख़।

पता : शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स, ज़ोन 1, एमपी नगर, भोपाल, मप्र 462011

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. प्रकाशक का नाम : पंकज कुमार पुरोहित।

पता : पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मप्र, 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

5. संपादक का नाम : पंकज सुबीर।

पता : रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

4. **उन व्यक्तियों के नाम / पते जो समाचार पत्र / पत्रिका के स्वामित्व में हैं। स्वामी का नाम :** पंकज कुमार पुरोहित। **पता :** रघुवर विला, सेंट एन्स स्कूल के सामने, चाणक्यपुरी, सीहोर, मप्र 466001

क्या भारत के नागरिक हैं : हाँ।

(यदि विदेशी नागरिक हैं तो अपने देश का नाम लिखें) : लागू नहीं।

मैं, पंकज कुमार पुरोहित, घोषणा करता हूँ कि यहाँ दिए गए तथ्य मेरी संपूर्ण जानकारी और विश्वास के मुताबिक सत्य हैं।

दिनांक 20 मार्च 2018

हस्ताक्षर पंकज कुमार पुरोहित
(प्रकाशक के हस्ताक्षर)

शिवना प्रकाशन : जनवरी 2018 सेट में शामिल पुस्तकें

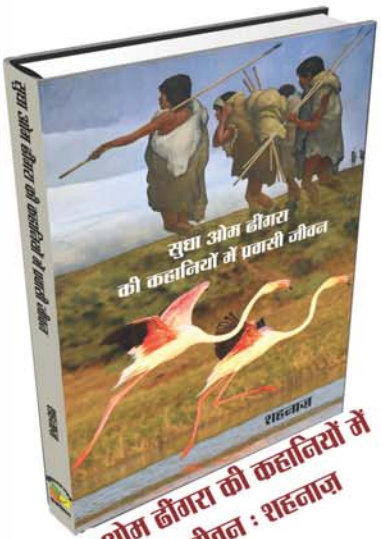

सुधा ओम ढींगरा की कहानियों में प्रवासी जीवन : शहनाज़

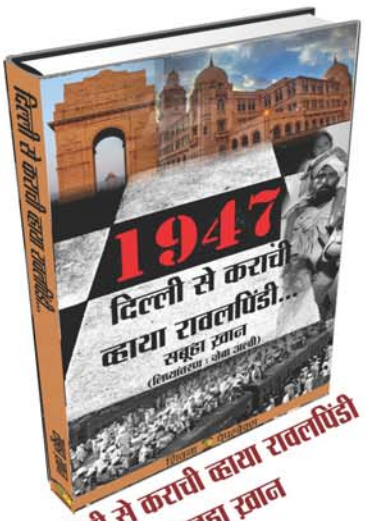

दिल्ली से कराची व्हाया रावलपिंडी
सबूहा ख़ान

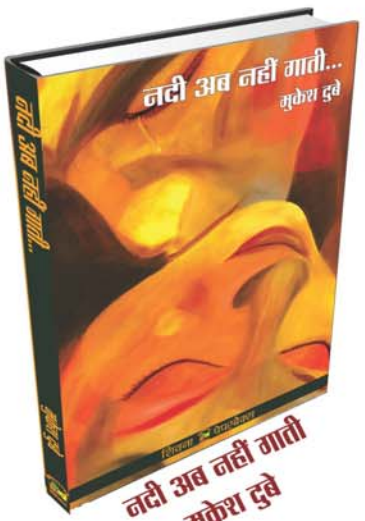

नदी अब नहीं गाती
मुकेश दुबे

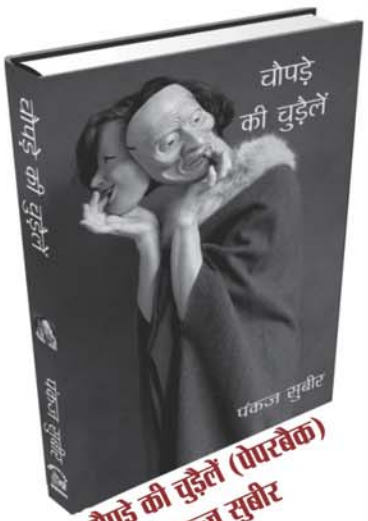

चौपड़े की चुड़ैलें (पेपरबैक)
पंकज सुबीर

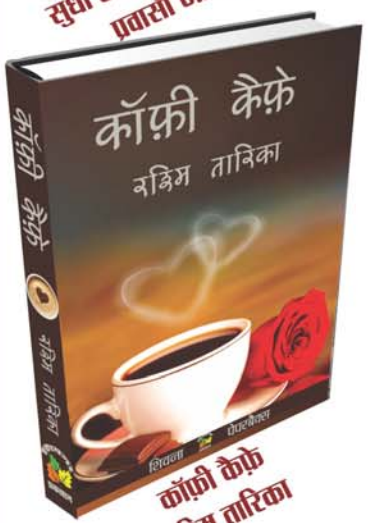

कॉफ़ी कैफ़े
रश्मि तारिका

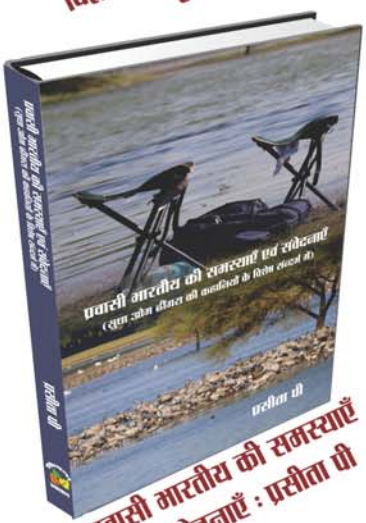

प्रवासी भारतीय की समस्याएँ एवं संवेदनाएँ : प्रसीता पी

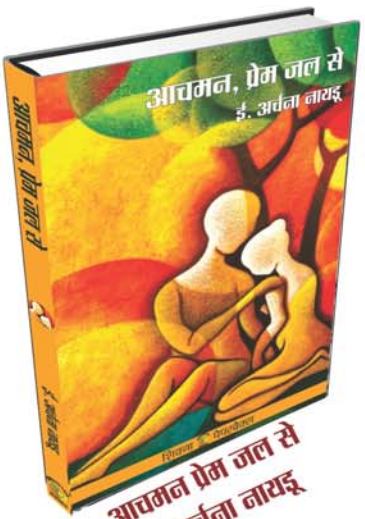

आचमन प्रेम जल से
ई. अर्चना नायडू

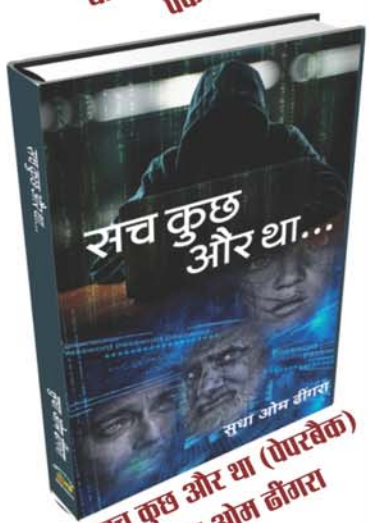

सच कुछ और था (पेपरबैक)
सुधा ओम ढींगरा

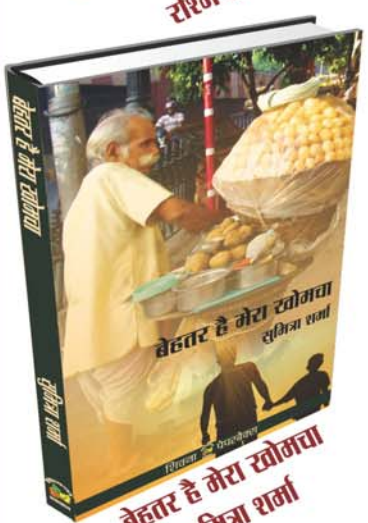

बेहतर है मेरा खोमचा
सुमित्रा शर्मा

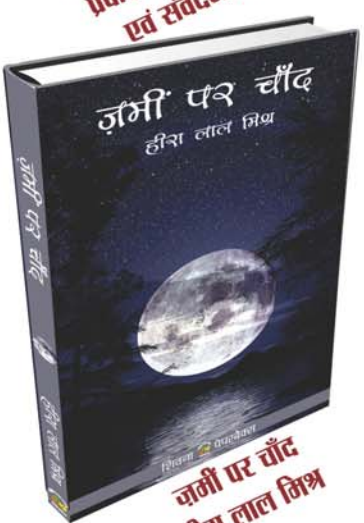

ज़मीं पर चाँद
हीरा लाल मिश्र

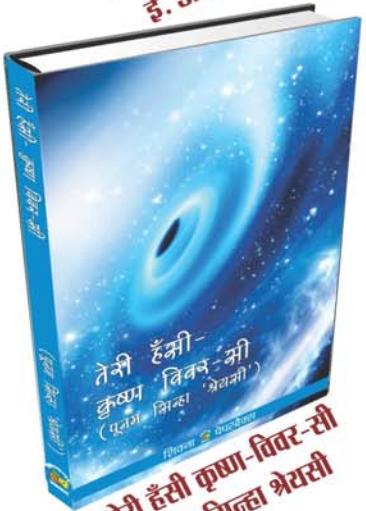

तेरी हँसी कृष्ण-विवर-सी
पूनम सिन्हा श्रेयसी

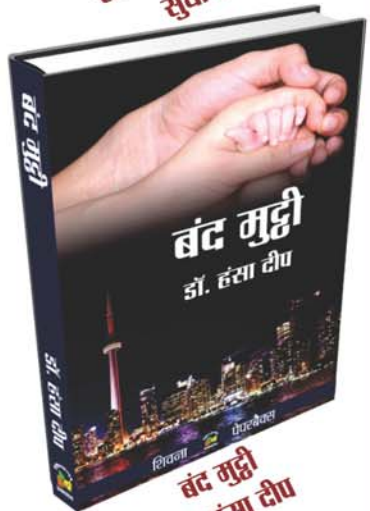

बंद मुट्ठी
डॉ. हंसा दीप

शिवना प्रकाशन
शिवना प्रकाशन, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने
सीहोर, मध्य प्रदेश 466001
फोन : 07562-405545, 07562-695918
मोबाइल : +91-9806162184 (शहरयार)
ईमेल : shivna.prakashan@gmail.com
http://shivnaprakashan.blogspot.in
https://www.facebook.com/shivna.prakashan

शिवना प्रकाशन की पुस्तकें सभी प्रमुख ऑनलाइन शॉपिंग स्टोर्स पर

amazon http://www.amazon.in
flipkart http://www.flipkart.com
Paytm https://www.paytm.com
ebay http://www.ebay.in

दिल्ली में पुस्तकें प्राप्त करें : हिन्दी बुक सेंटर, 4/5 आसफ अली रोड
फोन : 011-23286757 http://www.hindibook.com

शिवना प्रकाशन - नई पुस्तकें

शोध दृष्टि - सुधा ओम ढींगरा का साहित्य
(शोध-आलेख संग्रह)
बलबीर सिंह, प्रकाश चंद बैरवा

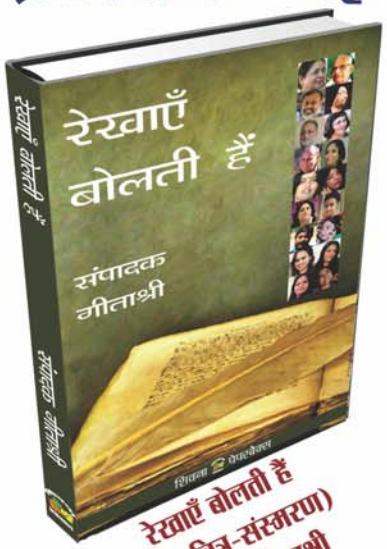

रेखाएँ बोलती हैं
(रेखाचित्र-संस्मरण)
संपादक गीताश्री

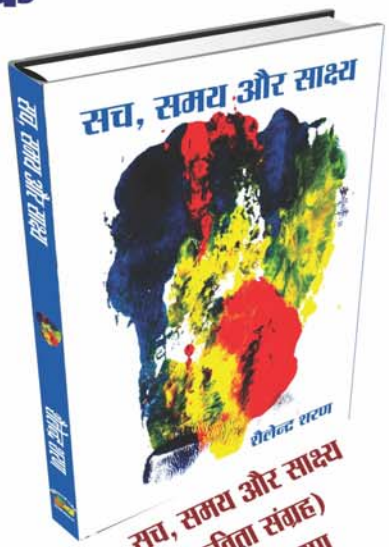

सच, समय और साक्ष्य
(कविता संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

ख़ामोश आवाज़ें
(उर्दू कहानी संग्रह)
सैयद असद मेहदी

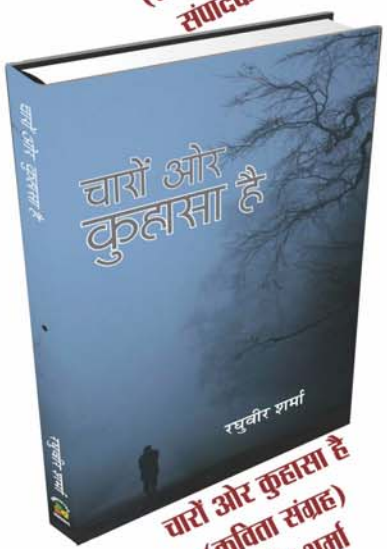

चारों ओर कुहासा है
(कविता संग्रह)
रघुवीर शर्मा

संकल्प और सपने
(लघुकथा संग्रह)
सदाशिव कौतुक

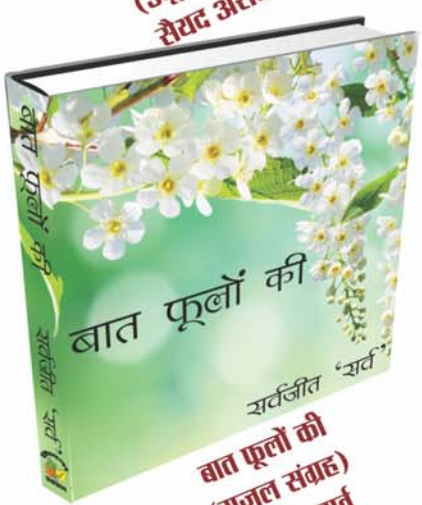

बात फूलों की
(ग़ज़ल संग्रह)
सर्वजीत सर्व

अभी तुम इश्क़ में हो...(पेपरबैक)
(ग़ज़ल संग्रह)
पंकज सुबीर

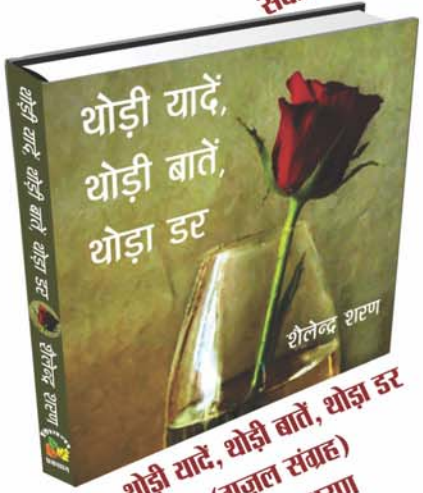

थोड़ी यादें, थोड़ी बातें, थोड़ा डर
(ग़ज़ल संग्रह)
शैलेन्द्र शरण

If Undelivered Please Return to :
P. C. Lab, Shop No. 3-4-5-6, Samrat Complex Basement, Opp. Bus Stand, Sehore, M.P. 466001
Phone 07562-405545, 07562-695918, Mobile 09584425995, 07828313926, 09806162184

स्वत्वधिकारी एवं प्रकाशक पंकज कुमार पुरोहित के लिए पी. सी. लैब, शॉप नं. 3-4-5-6, सम्राट कॉम्प्लैक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, मध्य प्रदेश 466001 से प्रकाशित तथा मुद्रक ज़ुबैर शेख़ द्वारा शाइन प्रिंटर्स, प्लॉट नं. 7, बी-2, क्वालिटी परिक्रमा, इंदिरा प्रेस कॉम्प्लैक्स,ज़ोन 1, एम पी नगर, भोपाल, मध्य प्रदेश 462011 से मुद्रित।